

ईकाई – 4

भारतीय राजनीति और चुनौतियाँ

4.0 ईकाई परिचय

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित होने के मार्ग में बहुत सारी समस्याएँ और चुनौतियाँ हैं। जातिवाद का भारतीय राजनीति पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। जाति व्यवस्था भारतीय समाज की परम्परागत विशेषता है। इसी तरह से क्षेत्रीयवाद भी एक बड़ी समस्या है। जिससे भारतीय राजनीति के सामने चुनौती प्रस्तुत की है। इससे राष्ट्रीय एकता को नुकसान हुआ तथा पृथकतावादी ताकतों को बढ़ावा मिला। वर्ग राजनीति, दलित मुद्दे भी ऐसे घटक हैं जिनसे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या को बढ़ाया है। महिलाओं की राजनीति में सहभागिता का बहुत कम होना भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए ठीक नहीं है। हालांकि 74वें संशोधन के माध्यम से महिलाओं को पंचायती राज में 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान करके उनकी सहभागिता को प्रोत्साहित किया है लेकिन ये पर्याप्त नहीं है। पंचायती राज प्रणाली का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय लोकतन्त्र को मजबूत करना तथा लोगों की मूल आवश्यकताओं को राजनीतिक व प्रशासनिक प्रयास से पूरा करना है।

हम ये कह सकते हैं कि उपरोक्त चुनौतियों का सामना करते हुए भी भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था सफलतापूर्वक अपना कार्य कर रही है, जो अपने-आप में एक मिसाल है।

4.1 उद्देश्य

- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाली विभिन्न चुनौतियों को पहचानना
- इन चुनौतियों का सामना करते हुए भी भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सफलता का मूल्यांकन
- इन समस्याओं से निपटने के प्रयासों को कैसे प्रभावी बनाया जाये

- पंचायती राज व्यवस्था जो कि लोकतन्त्र में शासन की सबसे छोटी ईकाई है उसकी कार्यप्रणाली का मूल्यांकन करना
- पृथक्तावादी शक्तियों को कैसे पहचानकर उनसे निपटा जाये जिससे राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा मिले

4.2 जाति और भारतीय राजनीति (The Caste and Indian Politics)

4.2.1 परिचय

परम्परावादी भारतीय समाज में आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना भारतीय राजनीति की एक अद्भुत विशेषता है। भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रारम्भ होने के बाद यह धारणा विकसित हुई कि पश्चिमी ढंग की राजनीतिक संस्थाएं और लोकतंत्रात्मक मूल्यों को अपनाने के फलस्वरूप पारम्परिक संस्था जातिवाद का अन्त हो जाएगा किन्तु आजादी के बाद भारत की राजनीति में जाति का प्रभाव अनवरत रूप से बढ़ता गया। जहां सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में जाति की शक्ति घटी है वहां राजनीति और प्रशासन पर इसके बढ़ते हुए प्रभाव को राजनीतिज्ञों, प्रशासनाधिकारियों और केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने स्वीकार किया है।

4.2.2 उद्देश्य

- जाति क्या होती है या उसका आधार क्या है
- भारत में जाति किस तरह राजनीति को प्रभावित करती है
- राजनीति जाति को कैसे प्रभावित करती है
- क्या जातियों के राजनीति पर प्रभाव से भारत में भाइचारे को ठेस पहुँचाई है

4.2.3 जाति का परम्परागत अर्थ एवं रूप

(Traditional Meaning and Nature of Caste)

जाति प्रथा किसी न किसी रूप में संसार के हर कोने में पायी जाती है, पर यह गम्भीर सामाजिक कुरीति के रूप में यह हिन्दू समाज की ही विशेषता है। यह व्यवस्था एक अति प्राचीन व्यवस्था रही है। इसका अभिप्रायः पेशे के आधार पर समाज को कई भागों में बांट देना है। सामान्यतया यह माना जाता है कि जाति प्रथा की उत्पत्ति वैदिक काल में हुई। ब्राह्मण धार्मिक और वैदिक कार्यों का सम्पादन करते थे। क्षत्रियों का कार्य देश की रक्षा करना और शासन प्रबन्ध करना था। वैश्य कृषि और वाणिज्य

सम्भालते थे तथा शुद्रों को अन्य तीन वर्णों की चाकरी करनी पड़ती थी। शुरु-शुरु में जाति प्रथा के बन्धन कठोर न थे और वह जन्म पर नहीं अपितु कर्म पर आधारित थे। बाद में जाति प्रथा में कठोरता आती गयी। वह पूरी तरह जन्म पर आधारित हो गयी तथा एक जाति से दूसरी जाति में अन्तःक्रिया असम्भव हो गयी। अपने मौलिक रूप में जाति प्रथा उपयोगी थी चूंकि वह श्रम विभाजन के सिद्धांत पर आधारित थी। अतः उसके आर्थिक क्षेत्र में निपुणता के तत्व का समावेश किया। एक जाति का पेशा उसी जाति में होता था। बेटा बाप से अपना पुश्तैनी पेशा सिखता था और प्रायः उसी को अपनी आजीविका के साधन के रूप में अपना लेता था। इस प्रथा ने एक जाति और बिरादरी के लोगों में भाई-चारे की भावना को बढ़ाया। एक जाति के लोग एक-दूसरे से भली भांति परिचित होते थे तथा एक-दूसरे के सुख-दुःख में काम आते थे। प्रो० घुरिये (Ghurye) ने जाति प्रथा की विशेषताएं बतायी है, जो इस प्रकार है :

1. भारत में जाति ऐसे समुदाय है जिसका अपना विकसित जीवन है और इसकी सदस्यता जन्म से निश्चित होती है।
2. भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति जानता है और जातियों में पदसोपान में ब्राह्मण सबसे ऊपर माना जाता है।
3. जातियों के आधार पर खान-पान और सामाजिक आदान-प्रदान के प्रतिबंध लगे रहते हैं।
4. गांवों तथा शहरों में जाति के आधार पर पृथकता की भावना बनी रहती है।
5. कुछ जातियां कातिपय विशेष प्रकार के व्यवसायों को अपना पुश्तैनी अधिकार समझती है।
6. जातियों की परिधि में ही वैवाहिक आदान-प्रदान होता है और जातियां कई उपजातियों में विभक्त होती है। उप-जातियों में भी वैवाहिक परिसीमाएं है।

जाति का राजनीति से सम्पर्क सूत्र (Politics Attached to Caste)

स्वाधीनता संग्राम के दौरान ऐसा दिखाई देता था कि जनता पर जातिवाद का प्रभाव कम हो रहा है। किन्तु आजादी के बाद जातिवाद ने फिर जोर पकड़ा और व्यस्क मताधिकार व्यवस्था को देश में लागू कर दिए जाने के परिणामस्वरूप यह एक

राजनीतिक शक्ति के रूप में उदित हुआ। वैसे राजनीति पर जातिगत प्रभाव प्रतिनिधि व्यवस्था के लागू होने के समय से ही शुरू हो गया था, किन्तु यह प्रभाव नगण्य ही था। इसके लिए उत्तरदायी थे ब्रिटिश प्रशासन राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सीमित मताधिकार स्वतंत्रता की प्राप्ति ने प्रथम दो कारणों का निराकरण कर दिया और नए संविधान में अपनायी गयी व्यस्क मताधिकार व्यवस्था ने तीसरे का। फलतः जातियों के प्रभाव क्षेत्र में आशातीत वृद्धि हो गयी। आरम्भ में सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टि से उच्च अथवा श्रेष्ठ जातियां ही राजनीति से प्रभावित रही और राजनीतिक लाभ उन्हीं तक सीमित रहे। समय के साथ-साथ मध्यम और निम्न समझी जाने वाली जातियां आगे आने लगी और उसने राजनीतिक प्रभाव को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहने लगी। प्रो० रूडोल्फ के शब्दों में, 'भारत के राजनीतिक लोकतंत्र के संदर्भ में जाति वह धुरी है जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों और तरीकों की खोज की जा रही है। यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गयी है कि इसके जरिए भारतीय जनता को लोकतान्त्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है।

जाति और राजनीति में अन्तःक्रिया सैद्धान्तिक आधार

(Interaction between Caste and Politics : Theoretical Framework)

भारत में जाति और राजनीति में किस प्रकार का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में चार प्रकार से विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं —

1. यह कहा जाता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था का संकलन जाति की संरचना के आधार पर हुआ है और राजनीति केवल सामाजिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति मात्र हैं। सामाजिक संगठन राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित करता है।
2. राजनीति के प्रभाव के फलस्वरूप जाति नया रूप धारण कर रही है। लोकतान्त्रिक राजनीति के अन्तर्गत राजनीति की प्रक्रिया प्रचलित जातीय संरचनाओं को इस प्रकार प्रयोग में लाती है जिससे सम्बद्ध पक्ष अपने लिए समर्थन जुटा सकें तथा अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना सकें। जिस समाज में जाति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण संगठन माना जाता है उसमें यह अत्यन्त

स्वाभाविक है कि राजनीति इस संगठन के माध्यम से अपने आपको संगठित करने का प्रयास करे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिसे हम राजनीति में जातिवाद के नाम से पुकारते हैं वह वास्तव में जाति का राजनीतिकरण है।

3. भारत में राजनीति 'जाति' के इर्द-गिर्द घूमती है। जाति प्रमुखतम राजनीतिक दल है। यदि मनुष्य राजनीति की दुनिया में ऊँचा उठना चाहता है तो उसे अपने साथ अपनी जाति को लेकर चलना होगा भारत में राजनीतिक जातिय समुदायों को इसलिए संगठित करते हैं ताकि उनके समर्थन में उन्हें सत्ता तक पहुंचने में सहायता मिल सके।
4. जातियां संगठित होकर प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में भाग लेती है और इस प्रकार जातिगत भारतीय समाज में जातियाँ ही 'राजनीतिक शक्तियाँ' बन गयी है।

जाति के राजनीतिकरण की विशेषताएँ (Characteristic of Caste Politicisation)

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका की उभरती विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. जाति व्यक्ति को बांधने वाली कड़ी है। जातीय संघों और जातीय पंचायतों ने जातिगत राजनीतिक महत्वकांक्षाओं को बढ़ाया है। जाति व्यक्ति को समाप्त करने वाले आन्दोलन अन्तेतागत्वा नयी जातियों के रूप में मुखरित हुए जैसे लिंगायत, कबीरपन्थी और सिक्ख आन्दोलन स्वयं नयी जातियां बन गए।
2. शिक्षा, शहरीकरण, औद्योगिककरण और आधुनिककरण से जातियां समाप्त नहीं हुईं अपितु उनमें एकीकरण की प्रवृत्ति को बल मिला और उनकी राजनीतिक भूमिका में वृद्धि हुई।
3. राजनीति में प्रधान जाति की भूमिका का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रधान जाति (Dominant Caste) न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से ही शक्तिशाली होती है, बल्कि संख्या में भी गांव या इलाकों में ज्यादा होती है। प्रधान जाति अपने संख्या दल के आधार पर गांव और क्षेत्र की स्थानीय संस्थाओं जैसे पंचायतों की राजनीति में सक्रिय होती है। यदि किसी राज्य

- विशेष में किसी जाति की प्रधानता होती है तो राज्य राजनीति में जाति एक प्रभावक तत्व बन जाती है।
4. उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही जातिगत समुदायों का झुकाव राजनीति की ओर हो गया था जबकि ब्रिटिश शासन ने भारत में एक मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था की नींव डाली थी। सबसे पहले इसका ध्यान जनगणना कार्यालय की ओर गया जहां जातीय समुदायों ने सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्ति के ध्येय से अपने संगठन का नामकरण कराना आवश्यक समझा। बाद में अपनी जाति के लोगों के हितों को संरक्षण के लिए जातीय संघों ने प्रस्ताव पारित किए और शासन को अपनी मांगों के लिए प्रभावित करना आरम्भ किया। यहां तक कि कुछ जातियों ने शैक्षणिक सुविधा, शिक्षण संस्थाओं में जातिगत आरक्षण और सरकारी नौकरियों में आरक्षण की मांग की। मद्रास की वेनिया (Venniyars) जाति के नेता पदायची (Padayachi) ने सी० राजगोपालाचारी के मन्त्रिमण्डल में शामिल होने से इन्कार कर दिया क्योंकि उन्होंने उनकी जातीय मांगों को मानने से इन्कार कर दिया था। बाद में वे कामराज मन्त्रिमण्डल में शामिल हो गए क्योंकि उन्होंने वेनियरो की मांगे स्वीकार कर ली।
 5. निर्वाचनों के दिनों में जातिगत समुदाय प्रस्ताव पारित करके राजनीतिक नेताओं और दलों को अपने जातिगत समर्थन की घोषणा करके अपने हितों को मुखरित करते हैं।
 6. जाति की भूमिका राष्ट्रीय स्तर की राजनीति पर उतनी नहीं है जितनी स्थानीय और राज्य राजनीति पर है।
 7. जाति और राजनीति के सम्बन्ध स्थैयिक न होकर शक्तिशील हैं।

भारतीय राजनीति में 'जाति' की भूमिका (Role of Caste in Indian Politics)

जातीय व्यवस्था भारतीय समाज का एक परम्परागत तत्व है। भारत के नए संविधान में लागू होने से व्यस्क मताधिकार के आधार पर देश में चुनाव आरम्भ हुए और जातीय संस्थाएं महत्वपूर्ण बन गईं, क्योंकि उनके पास भारी संस्था में मत थे और

लोकतन्त्र में सत्ता प्राप्त करने के लिए मतों की आवश्यकता थी। इस कारण से धीरे-धीरे राजनीति में जातिवाद की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती गई।

(1) राजनीतिक दलों का गठन जाति के आधार पर

(Organisation of the Political Parties on the Basis of Caste)

भारत में अनेक राजनीतिक दलों का गठन जातीय आधार पर किया गया है। राष्ट्रीय दल चाहे प्रत्यक्ष रूप से किसी जाति विशेष का समर्थन न रखते हो, परन्तु क्षेत्रीय स्तर पर जातिवाद का खूब प्रचार किया जाता है। वर्तमान स्थिति में बहुजन समाज पार्टी, जाति पर आधारित एक दल है। तमिलनाडु में डी०एम०के० तथा ए०आई०ए०डी०एम०के० (A.I.A.D.M.K.) मुख्य रूप से ब्राह्मण विरोधी अथवा गैर-ब्राह्मणों के दल तथा बंगाल में रिपब्लिकन पार्टी आदि भी जातिवाद पर आधारित राजनीतिक दल हैं। मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के बाद तो जनता दल भी अपने आपको पिछड़े वर्ग का मसीहा घोषित करने में लगा हुआ है। चौ० चरण सिंह तथा देवीलाल ने भी अजगर के नाम से अहीर, जाट, गुजर तथा राजपूतों का संयुक्त मोर्चा बनाकर राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए लगातार प्रयत्न करते रहे।

(2) राजनीतिक नेतृत्व (Political Leadership)

भारतीय राजनीति में जातिवाद ने राजनीतिक नेतृत्व को बहुत हद तक प्रभावित किया है। सभी जातियों के समर्थन के आधार पर अनेक नेता राजनीति में अपना महत्व बनाए हुए हैं। उदाहरण के तौर पर पंजाब में प्रकाश सिंह बादल अकाली सिखों तथा हरियाणा में राव वीरेन्द्र सिंह अहीर जाति के तथा चौ० देवी लाल जाट जाति के समर्थक के आधार पर बहुत समय से राजनीति में अपने समर्थन को बनाए रखा। वर्तमान स्थिति में बिहार में लालू प्रसाद यादव तथा उत्तर प्रदेश व कुछ अन्य राज्यों में काशीराम व मायावती, रामविलास पासवान तथा शरद यादव जाति के आधार पर ही अपने नेतृत्व को बनाए हुए हैं।

(3) चुनाव में उम्मीदवारों का चयन (Selection of Candidate in Elections)

प्रत्येक चुनाव के समय उम्मीदवारों का चयन करने में जातिवाद का मुख्य रूप से आधार बनाया जाता है। प्रायः जिस निर्वाचन क्षेत्र में जिस जाति का बहुमत होता है,

उसी जाति के उम्मीदवार को ही दल का टिकट दिया जाता है। यह बात कांग्रेस तथा अन्य सभी राजनीतिक दलों पर लागू होती है। चूंकि भारतीय जनता का एक बहुत बड़ा भाग अभी तक अशिक्षित है, उन पर जातिवाद का असर और भी अधिक होता है। जिस निर्वाचन क्षेत्र में ब्राह्मण अधिक है, वहां पर प्रायः ब्राह्मण उम्मीदवार और जहां पर जाट अधिक संख्या में हैं, वहां पर जाट उम्मीदवार को ही खड़ा किया जाता है।

(4) चुनाव प्रचार (Election Propaganda)

भारत में होने वाले सभी चुनावों, पंचायत से लेकर लोकसभा तक में चुनाव अभियान में जातिवाद का खुलकर सहारा लिया जाता है। मतदाताओं की जातीय भावनाओं को उभारकर उन्हें अपनी जाति के उम्मीदवार के लिए मत देने की अपील की जाती है और प्रायः उसी जाति का उम्मीदवार चुनाव में विजयी होता है, जिस जाति के मतदाताओं की संख्या उस निर्वाचन क्षेत्र में सबसे अधिक होती है।

(5) जाति तथा मतदान व्यवहार (Caste and Voting Behaviour)

भारत में चुनावों के समय बहुत बड़ी संख्या में मतदाता अपनी जाति के उम्मीदवार के पक्ष में ही मतदान करते हैं। वे केवल अपना मत जाति के उम्मीदवार के पक्ष में ही नहीं देते बल्कि अन्य व्यक्तियों को भी अपनी जाति के उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करने के लिए कहते हैं। बिहार, हरियाणा, पंजाब तथा उत्तरप्रदेश आदि के क्षेत्र इसके लिए बहुत कुख्यात रहे हैं। सन् 1996 तथा 1998 में हुए लोकसभा चुनावों में पंजाब में अकाली दल की भारी जीत का मुख्य कारण जातिवाद ही है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जाट-गुज्जर राजनीति एक महत्वपूर्ण तथ्य है।

सन् 1998 के लोकसभा चुनाव में हरियाणा में ओमप्रकाश चौटाला के राष्ट्रीय जनता दल की अच्छी सफलता का एक कारण जाट जाति के मतों का विभाजन न होना। इसी प्रकार आन्ध्र प्रदेश में कार्मभा और रेड्डी, कर्नाटक में वोकलिग्गा और लिगांयत जाति के मतदाता प्रायः अपनी जाति के उम्मीदवारों के पक्ष में ही मतदान करते हैं। हरियाणा में तो चुनाव के समय यह नारा प्रायः सुनाई पड़ता है कि “जाट की बेटा जाट को जाट की वोट जाट को।” सन् 1996 तथा 1998 के लोकसभा चुनावों में

कांग्रेस पार्टी को विशेष सफलता न मिलने का एक कारण उससे भारी संख्या में पिछड़े वर्गों तथा मुसलमानों के मतों का कट जाना था।

(6) जातियों के नाम पर आरक्षण (Reservation on Caste Basis)

संविधान निर्माताओं ने अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जन-जातियों के लिए प्रशासन में कुछ स्थान आरक्षित करने की व्यवस्था 10 वर्ष के लिए की थी। इस नीति का उद्देश्य समाज के अत्याधिक पिछड़े वर्ग को शेष समाज के बराबर लाना था, लेकिन उसे उसकी मूल भावना के रूप में लागू नहीं किया गया। उन्हें सुरक्षित वोट बैंक मानकर उनके लिए यह आरक्षण बार-बार बढ़ाया जाता है। इसके अलावा, पिछड़े वर्ग के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा वी०पी० सिंह सरकार ने करके मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र को जातीय संघर्ष की होली में झोंक दिया था। सैकड़ों युवक-युवतियां आत्मदाह कर बैठे। अरबों की सम्पत्ति नष्ट हुई। विकास कार्य रूक गए। सामान्य जन-जीवन अस्त व्यस्त हो गया और हालात नियंत्रण से बाहर हो गए थे। न्यायपालिका को मामला सौंपकर ही शांति कायम की जा सकी।

(7) जाति एवं प्रशासन (Caste and Administration)

लोकसभा और विधानसभाओं के लिए जातिगत आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है, केन्द्र एवं राज्य सरकारी नौकरियों एवं पदोन्नति के लिए जातिगत आरक्षण का प्रावधान है। मेडिकल एवं इंजीनियरिंग कॉलेजों में विद्यार्थियों की भर्ती हेतु आरक्षण के प्रावधान मौजूद हैं। चरण सिंह सरकार ने तो अल्पकाल में एक अध्यादेश के माध्यम से पिछड़ी जातियों के लिए केन्द्रीय सरकार की सेवा में आरक्षण व्यवस्था घोषित करने की मंशा प्रकट की थी और इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को भी ताक में रख दिया था। यदि अध्यादेश लागू हो जाता तो मध्यम जातियों, जैसे अहीर, यादव, कुर्मी आदि को भी आरक्षण के अवसर मिल जाते। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने 1990 में मंडल रिपोर्ट लागू कर नौकरियों में पिछड़ी जातियों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया। ऐसा भी माना जाता है कि भारत में स्थानीय स्तर के प्रशासनिक अधिकारी निर्णय लेते समय अथवा निर्णयों के क्रियान्वयन में प्रधान और प्रतिष्ठित अथवा संगठित जातियों के नेताओं से प्रभावित हो जाते हैं।

(8) पंचायती राज तथा जातिवाद (Panchayati Raj and Casteism)

आजादी के बाद गांवों में पंचायती राज की व्यवस्था की गई, पंचायती राज के तीन स्तरों – पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद् के चुनाव में जाति का बहुत महत्व है। कई बार चुनाव में जाति की भावना भयानक रूप धारण कर लेती है तथा दंगे-फसाद भी हो जाते हैं।

(9) सरकार के निर्माण में जातिवाद का प्रभाव

(Influence of Caste in the Formation of Government)

केन्द्र तथा राज्यों में सरकार के निर्माण के समय भी जातिवाद महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रधानमंत्री अथवा राज्यों के मुख्यमंत्री अपने मंत्रिमण्डलों का निर्माण करते समय इस बात पर विशेष रूप से ध्यान रखते हैं कि सभी जातियों के सदस्यों को उसमें प्रतिनिधित्व मिले। मुख्यमंत्री के पद पर भी प्रायः उसी जाति का सदस्य नियुक्त होता है जिस जाति का उस राज्य में बहुमत होता है। पंजाब में अकाली दल की सरकार बनी, तो सरदार दरबारा सिंह, प्रकाश सिंह बादल, सुरजीत सिंह बरनाला, बेअंत सिंह तथा पुनः प्रकाश सिंह बादल ही मुख्यमंत्री बने। इसके विपरीत हरियाणा अथवा हिमाचल प्रदेश में कभी किसी सिख को मुख्यमंत्री बनने की संभावना दिखाई नहीं देती।

(10) निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका (Role of Caste in Decision Making)

भारत में जातियां संगठित होकर राजनीतिक और प्रशासकीय निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के तौर पर संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों व जन-जातियों के लिए जो व्यवस्था आरम्भ में केवल 10 वर्ष के लिए की गई थी उसको उन्होंने दबाव डालकर बढ़ावा लिया है। आगे भी इसके समाप्त होने की कोई संभावना दिखाई नहीं देती।

जाति की भूमिका : वरदान या अभिशाप

(The Role of Caste : Blessing or a Curse)

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का मूल्यांकन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। कई लोग जाति को राजनीति का कैंसर मानते हैं। जाति प्रथा को राष्ट्रीय एकता

के मार्ग में बाधक माना जाता है। क्योंकि इससे व्यक्तियों में पृथकतावाद की भावना जागृत होती है। राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा अपने जातिगत हितों को अधिक महत्व देने लगते हैं। जाति निष्ठाओं का सृजन कर यह प्रथा लोकतन्त्र के विकास मार्ग को अवरुद्ध कर देती है। डी०आर० गाडगिल के अनुसार, क्षेत्रीय दबावों से कहीं ज्यादा खतरनाक बात यह है कि वर्तमान काल में जाति व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधने में बाधक सिद्ध हुई है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम०एन० श्री निवास का मत है कि परम्परावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को उस तरह प्रभावित किया है कि ये राजनीतिक संस्थाएं अपने मूलरूप में कार्य करने में समर्थ नहीं रही है।

दूसरी तरफ अमरीकी लेखकों—रूडाल्फ एण्ड रूडाल्फ का मत है कि जाति व्यवस्था ने जातियों के राजनीतिकरण में सहयोग देकर परम्परावादी व्यवस्था को आधुनिकता में ढालने के सांचे का कार्य किया है। वे लिखते हैं अपने परिवर्तित रूप में जाति व्यवस्था ने भारत में कृषक समाज में प्रतिनिधित्व लोकतन्त्र की सफलता करके तथा भारतीयों की दूरी कम करके उन्हें अधिक समान बनाकर समानता के विकास में सहायता दी है।

4.2.4 निष्कर्ष

संक्षेप में, चाहे जाति आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक न हो तथापि राजनीति में जाति का हस्तक्षेप लोकतन्त्र की धारणा के प्रतिकूल है। जातिवाद देश, समाज और राजनीति के लिए बाधक है। विविधता की सीमाएं होती हैं। इस देश में इतनी जातियां, उपजातियां तथा सहजातियां पैदा हो गयी हैं कि वे एक-दूसरे से पृथक रहने में ही अपने-अपने अस्तित्व की रक्षा समझती हैं। यह पृथकतावादी दृष्टि राष्ट्रीय एकता के लिए अत्याधिक घातक है।

4.2.5 मुख्य शब्दावली

- सीमित मताधिकार : केवल कुछ ही लोगों को वोट का अधिकार होना। ब्रिटिश शासन के दौरान यही मताधिकार लागू था।

- व्यस्क मताधिकार : सभी 18 वर्ष के नागरिकों को भारतीय संविधान द्वारा बिना किसी भेदभाव के वोट का अधिकार दिया है। पहले ये आयु सीमा 21 वर्ष थी लेकिन 61वें संवैधानिक संशोधन द्वारा इसे 18 वर्ष कर दिया गया।
- वर्ण व्यवस्था : भारत में प्राचीन काल से ये व्यवस्था लागू थी जिसमें व्यक्ति के कर्म के आधार पर उसका वर्ण तय होता था। चार वर्ण पाए जाते थे – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र।

4.2.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का वर्णन कीजिए।
2. भारतीय राजनीति जाति के बोझ से दबी है। भली-भाँति स्पष्ट कीजिए।
3. भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका की रजनी कोठारी के विचारों के सन्दर्भ में विश्लेषण करें।
4. भारतीय राजनीति में जाति की महत्ता के विषय में रजनी कोठारी के विचारों का वर्णन कीजिए।
5. "भारत में राजनीति का जातिकरण हो रहा है।" स्पष्ट करें।
6. स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में जाति तथा राजनीति में अन्तःक्रिया की व्याख्या करो।
7. जातिवाद के दोषों का वर्णन करें।
8. "जातिवाद और लोकतन्त्र एक-दूसरे के विरोधी है।" स्पष्ट करें।
9. जातिवाद का राष्ट्रीय एकता पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है ?

4.2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, "दा गर्वनमेंट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया", पैनिटिश हॉल प्रेस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, "इण्डियन कान्स्टीट्यूशन", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966

- रजनी कोठारी, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, "कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, "दा ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया", प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, "डायनामिक्स ऑफ इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पालिटिक्स", स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, "स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग", एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, "दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस", सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, "दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फ़ैडरलिज्म", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश, "पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेन्डन्स", II एडिशन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियॉड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्ोरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, "डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस," एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, "स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया", वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998

- अतुल कोहली, "डेमोक्रेसी एण्ड डिशकनटेन्ट : इण्डियाज ग्राईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, "दा सक्शेश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेसी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, "पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, "कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, "इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, "तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.3 वर्ग—राजनीति (The Class Politics)

4.3.1 परिचय

विश्व के सभी समाजों में वर्ग पाए जाते हैं। पुरातन काल से ही आयु, लिंग, शिक्षा, आय, व्यवसाय होता रहा है। समान सामाजिक परिस्थिति वाले व्यक्ति समूह को वर्ग कहेंगे। जब जन्म को छोड़कर अन्य किसी भी आधार पर समाज को विभिन्न समूहों में विभाजित कर दिया जाता है, तो उनमें से प्रत्येक समूह को हम सामाजिक वर्ग कहते हैं। जैसे – पूँजीपति वर्ग, मजदूर वर्ग, शिक्षक वर्ग आदि।

4.3.2 उद्देश्य

1. भारत में वर्गों का स्वरूप क्या है
2. ये वर्ग राजनीति को किस प्रकार प्रभावित करते हैं
3. क्या संविधान के तहत हर एक वर्ग को समान विकास के अवसर प्रदान किए गए हैं
4. कमजोर वर्गों के लिए क्या कोई विशेष प्रयास किए गए हैं

4.3.3 भारत में वर्ग राजनीति का स्वरूप

जाति की भांति भारतीय समाज में भिन्न-भिन्न वर्ग पाये जाते हैं सारे भारतीय राजनीति को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं।

अगड़े वर्ग (Higher Classes) उच्च वर्ग की संज्ञा दी जाती है। इसमें ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य, नाडार और व्यायस्थ वर्गों को शामिल किया जाता है। इन्हें सवर्ण वर्ग के रूप में जाना जाता है। सामन्तों, जागीरदारों, पूँजीपतियों, उद्योगपतियों तथा बड़े किसानों, व्यापारियों और धार्मिक महन्तों को इस वर्ग में रखा जाता है। इन वर्गों का अल्पसंख्या में होने के बावजूद देश की राजनीति, व्यवसाय, प्रशासन तथा देश के संसाधनों पर प्रभुत्व रहा है। राजनीतिक दलों द्वारा भी इन्हीं वर्गों के हितों की पूर्ति की दिशा में ही कार्य किया जाता रहा है। जब पिछड़े और निम्न वर्गों ने इनके प्रमुख को

चुनौती देने अथवा इनके स्वार्थों पर चोट करने का प्रयत्न किया तो इस 'अगड़े वर्ग' ने उन्हें कुचलने हेतु उन पर अत्याचारों का कहर बरसाया है।

अंग्रेजी शासन के दौरान अंग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप भारत में मध्य वर्ग (Middle Class) का उदय हुआ। इस वर्ग की समान भाषा तथा समान विचार थे। इसमें अध्यापक, इंजीनियर, वकील तथा डॉक्टर प्रमुख थे। इसी वर्ग ने राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़चढ़ कर भूमिका अदा की। वर्तमान राजनीति में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

हमारे देश की जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग अनुसूचित जातियों, जन-जातियों, पिछड़े वर्गों (Backward Classes) का है। इन्हें सामान्यतः पिछड़े वर्ग की संज्ञा दी जाती है। यह वर्ग सदियों से अगड़े या उच्च वर्ग के अत्याचारों, उत्पीड़न और शोषण की प्रताड़ना का शिकार होने के कारण 'पिछड़ा' रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात यही कहानी कमोवेश रूप में जारी है आये दिन उच्च या सवर्ण वर्गों के अत्याचारों की घटनाओं की गूंज संसद में, राज्य विधान सभाओं और समाचार पत्रों में सुनाई पड़ती है। पिछड़े वर्ग को आर्थिक विपन्नता, सामाजिक अन्याय और राजनीतिक पिछड़ेपन के साथ ही गरीबी बेरोजगारी, भूखमरी, दरिद्रता, आर्थिक विपन्नता तथा आर्थिक अभावों का सामना भी करना पड़ रहा है। यह वर्ग सामाजिक अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न तथा सामाजिक दृष्टि से हीनता की मनोदशा से ग्रसित है।

भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में इस वर्ग के उत्थान के लिए प्रावधान निश्चित किये गए हैं। इससे देश में सामाजिक और आर्थिक न्याय की स्थापना की दिशा में आधार-भूमि तय हुई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं। देश में जागीरदारी और जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया है। राज्यों द्वारा भूमि सुधार कानूनों को लागू करके खेतिहर श्रमिकों को उनके आर्थिक उत्थान और कल्याण के लिए भी विभिन्न प्रकार के आरक्षणों के माध्यम से इन वर्गों को सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व और पदोन्नति व्यवस्था लागू करने के प्रयास किये गये हैं। देश की राजनीति में इन वर्गों का समुचित प्रतिनिधित्व हो, इसके लिए पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

इन वर्गों पर अत्याचारों को रोकने की दिशा में सार्थक कदम उठाये गए हैं। जिससे इन वर्गों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है और व्यवस्थापिका सभाओं और प्रशासन में इन वर्गों का प्रतिनिधित्व बढ़ा है। राजनीतिक जागरूकता में अभिवृद्धि हुई है। कतिपय वर्षों में प्रभावशाली राजनीतिक नेतृत्व का अभ्युदय हुआ है। डॉ० भीमराव अम्बेडकर, बाबू जगजीवनराम, चौधरी चरण सिंह, कर्पूरी ठाकुर जैसे नेताओं ने इन वर्गों का संगठित करके एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति बना दी है। वर्तमान में काशीराम, मुलायम सिंह यादव, लालू प्रसाद यादव, रामविलास पासवान, शरद यादव, सुश्री मायावती इन वर्ग के प्रमुख नेता हैं। विश्वनाथ प्रताप सिंह भी इस वर्ग के हितों के प्रवक्ता हैं इन नेताओं ने पिछड़े वर्गों को संगठित करने में उल्लेखनीय योगदान दिया है। इससे इन वर्गों में नया आत्म-विश्वास और गौरव की भावना का विकास हुआ है। इस वर्ग के नेतृत्व ने अपनी और सभी का ध्यान आकर्षित किया है। सभी राजनीतिक दल पिछड़े वर्गों में अपना जनाधार सशक्त करने के लिए इन वर्गों को अपने पक्ष में करने के लिए प्रयत्नशील हैं। राष्ट्रीय राजनीति दलों में डॉ० भीम राव अम्बेडकर को राष्ट्रीय नेता के रूप में सम्मान प्रदान करने और उनके विचारों का प्रचार करने की होड़ लगी हुई है।

4.3.4 निष्कर्ष

संक्षेप में, भारत के गांवों एवं शहरों में अलग वर्ग पाए जाते हैं। जहाँ गांवों में वर्गों का सम्बन्ध भू-स्वामित्व, कृषि एवं जाति से जुड़ा हुआ है। वहीं शहरों में व्यापार एवं औद्योगिकीकरण से। इस सम्बन्ध में माइकल यंग ने लिखा है कि “भूमि ने जाति को एवं मशीन ने वर्गों को जन्म दिया है।” अन्त में ये कहा जा सकता है कि विशेष रूप से दो वर्गों अगड़े पिछड़े वर्गों के आपसी समन्वय, सहयोग और सद्भावना पर देश की लोकतान्त्रिक व्यवस्था का भविष्य सुरक्षित रह सकता है।

4.3.5 मुख्य शब्दावली

1. उच्च वर्ग या अगड़ा वर्ग : बड़े-बड़े उद्योगों के मालिक पूंजीपति वर्ग और उच्च अधिकारी होते हैं।

2. पिछड़ा वर्ग या श्रमिक वर्ग : इनकी स्थिति निम्न स्तर की होती है। इनमें मजदूर, नौकर आदि शामिल होते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति खराब होती है।
3. मध्यम वर्ग : इनकी आर्थिक स्थिति सामान्य होती है, इस वर्ग में छोटे व्यापारी, किसान, शिक्षक आदि आते हैं।

4.3.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में वर्ग व्यवस्था पर निबन्ध लिखें।
2. भारत में वर्ग विभाजन के आधार क्या हैं और ये किस प्रकार राजनीति को प्रभावित करते हैं।
3. भारत में सामाजिक वर्गों की संरचना किस प्रकार की है। गांवों व शहरों की व्यवस्था में क्या भेद है ? वर्णन करें।

4.3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, "दा गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया", पैनेटिश हॉल प्रेस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, "इण्डियन कान्स्टीट्यूशन", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966
- रजनी कोठारी, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, "कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, "दा ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया", प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957
- जे०आर० सिवाच, "डायनामिक्स ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स", स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, "स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग", एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976

- सी०पी० भाम्भरी, "दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस", सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, "दा फाँउडेशन ऑफ इण्डियन फ़ैडरलिज्म", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश, "पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेन्डन्स", II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियॉड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, "डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस," एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, "स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया", वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, "डैमोक्रेसी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, "दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेसी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, "पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, "कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977

- अब्बास, "इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, "तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.4 महिलाओं की स्थिति और विकास (Women's Status and Development)

4.4.1 परिचय

शताब्दियों से भारत में ही नहीं बल्कि सारे संसार में पुरुषों की तुलना में महिलाओं को दूसरे स्थान पर माना जाता रहा है। मानव के पूरे इतिहास में पुरुषों को महिलाओं की तुलना में अधिक शक्तियाँ प्राप्त रही हैं। अभी तक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि ऐसा क्यों है ? लेकिन इसका परिणाम यह हुआ है कि महिलाओं और उनके कार्यों को सम्मान नहीं दिया गया। यद्यपि महिला और पुरुष के बीच अन्तर जैविक प्रजनन के आधार पर किया जाता है लेकिन हजारों वर्षों से विभिन्न साम्राज्यों द्वारा इस अन्तर का प्रयोग सुविधा के रूप में किया जाता रहा है।

विज्ञान के क्षेत्र में हुए विकास, सुधारवादी आन्दोलनों और दार्शनिकों तथा विचारकों द्वारा प्रस्तुत समानता और स्वतन्त्रता जैसी धारणाओं के फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति, उसकी भूमिका और समाज में उसकी स्थिति आदि पर प्रश्न किए जाने लगे हैं। विशेष रूप से 20वीं शताब्दी में महिलाओं और समाज के दलित वर्गों ने समानता के लिए संघर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय रूप देकर लिंग भेद से सम्बन्धित अन्याय के खिलाफ आवाज उठाई। ये मुद्दे भारत में पहले राष्ट्रीय आन्दोलन के एक भाग के रूप में और आजादी के बाद विकास के रूप में आए।

4.4.2 उद्देश्य

- भारत में महिलाओं की स्थिति कैसी है
- संविधान द्वारा महिलाओं को क्या अधिकार दिए गए हैं
- महिलाओं के उत्थान के लिए सरकारों द्वारा उठाए गए कदम
- क्या महिलाओं की स्थिति वर्तमान में सबल हुई है
- महिलाओं की स्थिति को कैसे सुदृढ़ किया जा सकता है

4.4.3 भारत में महिलाओं की स्थिति (Status of Women in India)

भारत में प्राचीन काल में अर्थात् वैदिक युग (ईसा से 1000 वर्ष पूर्व) में महिलाओं और पुरुषों के बीच का सम्बन्ध समानता पर आधारित था। लिंग सम्बन्धी

मापदण्ड उदार थे। यद्यपि विवाह का महत्व था लेकिन यह अनिवार्य नहीं था। पत्नी को हर हाल में पति के प्रति वफादार होने का बन्धन नहीं था। उसे पुरुषों की तरह सभी धार्मिक कार्यों और चढ़ावा चढ़ाने में स्वतन्त्र रूप से भाग लेने और सभी संस्कारों में शामिल होने का अधिकार था। रोजगार में लगी विवाहित महिलाएं अपनी सम्पत्ति और जायदाद को अपने अधिकार में रख सकती थी। अविवाहित महिलाएं पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त कर सकती थी।

ईसा पूर्व 100 वर्ष के बाद आर्यों के संघटित होने के समय विशेष रूप से उत्तरी भारत में हिन्दू समाज में अनेक प्रचण्ड परिवर्तन हुए। जिसके फलस्वरूप महिलाओं की स्वतन्त्रता में कमी आई। धीरे-धीरे सभी आर्य और गैर-आर्य महिलाएँ वैदिक और धार्मिक अध्ययन के लिए अयोग्य घोषित कर दी गईं। मनु संहिता तथा उपनिषद और शंकराचार्य इत्यादि ने भारतीय समाज में लैंगिक भेदभाव शुरू किया। 900 ई० में भारत पर मुसलमानों की विजय के साथ पर्दा प्रथा शुरू हुई। जिसने महिलाओं को घर की चारदीवारी तक ही सीमित कर दिया। मुस्लिम शासन के दौरान महिलाओं में साक्षरता की दर में तेजी से कमी आई विधवा विवाह पर धार्मिक प्रतिबन्ध के कारण समाज में सती प्रथा का प्रचलन शुरू हुआ।

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान अंग्रेजी शिक्षा के संपर्क में आने के बाद और कुछ मामलों में ब्रिटिश शासन के प्रति प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भारत में अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का जन्म हुआ। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज और कई अन्य आन्दोलनों ने महिलाओं के साथ किए जा रहे अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई। राजाराम मोहनराय ने बाल-विवाह और सती प्रथा को समाप्त करने के लिए आन्दोलन चलाया और महिलाओं के उद्धार के लिए अनेक काम किए। सरकार ने इसके सम्बन्ध में सबसे पहले 19वीं शताब्दी में कानून बनाए जिससे सती प्रथा का उन्मूलन (1829), विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856), कानूनी विवाह अधिनियम (1872) शामिल है। उन्नीसवीं शताब्दी की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है – बालिका शिक्षा का प्रयास।

राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय महिलाओं की छुपी व्यापक प्रतिभा भी सामने आई। गांधी जी ने महिलाओं से पर्दा हटाने और राजनीति में भाग लेने का आह्वान किया। सन् 1917 में महिलाओं का एक प्रतिनिधि मण्डल भारत सरकार के सचिव से मिला और उससे महिलाओं को मताधिकार प्रदान करने की मांग की। सन् 1927 में महिलाओं के कल्याण और विकास के लिए एक सम्मेलन आयोजित किया गया।

सामाजिक सुधार और राष्ट्रवादी आन्दोलनों के फलस्वरूप यद्यपि महिलाओं की दुर्दशा और उनके कल्याण के बारे में जागृति उत्पन्न हुई लेकिन महिलाओं के प्रति लोगों के व्यवहार में विशेष रूप से गांवों में, कोई खास परिवर्तन नहीं आया। कुछ महत्वपूर्ण कानून बनाये जाने के बाद भी सम्पत्ति, विरासत आदि के कानून महिलाओं के विरुद्ध ही बने रहे। कुल मिलाकर स्वतन्त्रता के समय महिलाएं सामाजिक आर्थिक प्रक्रिया की मुख्यधारा से बाहर ही रही। समाज में उनकी स्थिति संतोषजनक नहीं थी।

स्वतन्त्र भारत में महिलाओं के लिए कानूनी समानता

(Independent India and Legal Equality for Women)

भारत के संविधान निर्माताओं ने देश की सामाजिक संरचना में महिलाओं को उचित स्थान दिलाने का प्रयास किया। संविधान की प्रस्तावना में संविधान के जनकों ने सत्यनिष्ठा से दो विशेष उद्देश्यों पर बल दिया जिनका महिलाओं की स्थिति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था।

(क) न्याय सभी के लिए सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक।

(ख) समानता सभी के लिए प्रस्थिति और अवसर की।

मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धान्तों से सम्बन्धित संविधान के भाग III और IV में इन घोषणाओं का ठोस रूप से वर्णन किया गया है। मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित आधार के अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि राज्य किसी भी व्यक्ति को कानूनी समानता और कानून के समान संरक्षण से इन्कार नहीं करेगा। अनुच्छेद 15 में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि किसी भी व्यक्ति से जाति, धर्म और लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 16 में सार्वजनिक नियुक्तियों से सम्बन्धित मामलों में अवसर की समानता की व्यवस्था की गई है। इसके साथ-साथ

संविधान ने राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष उपलब्ध बनाने की शक्तियाँ भी प्रदान की है। संविधान में इस उपबन्ध को शामिल किए जाने से राज्य को महिलाओं के कल्याण के लिए कानून बनाना आसान हो गया है।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त राज्य को समाज के सामाजिक—आर्थिक कल्याण के लिए काम करने का निर्देश देने के साथ—साथ महिलाओं से सम्बन्धित चार विशिष्ट निर्देश भी देते हैं —

1. पुरुष तथा महिला दोनों को जीने के लिए पर्याप्त साधन प्राप्त करने का समान अधिकार है। (अनुच्छेद 39क)
2. महिलाओं और पुरुषों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन (अनुच्छेद 39ग, घ)
3. कामगार महिला और पुरुषों के स्वास्थ्य, शक्ति और बच्चों की अल्पव्यस्कता का शोषण नहीं किया जाएगा और आर्थिक आवश्यकता के कारण किसी भी नागरिक को ऐसा कार्य करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा जो उसकी उम्र और शक्ति के अनुकूल न हो (अनुच्छेद 39 ड)
4. कार्य करने के लिए उचित और मानवीय स्थितियां बनाने तथा प्रसूति—सुविधा उपलब्ध कराने के लिए राज्य आवश्यक व्यवस्था करेगा।

राज्य के इन नकारात्मक और सकारात्मक उत्तरदायित्वों के अतिरिक्त संविधान ने सभी नागरिकों के लिए (1976 के 42 में संशोधन के बाद) महिलाओं की प्रतिष्ठा का अनादर करने वाली मान्यताओं को समाप्त करने हेतु मौलिक कर्तव्य की व्यवस्था भी की है। (अनुच्छेद 51क) भारत के संविधान ने सार्वभौमिक मताधिकार की व्यवस्था की है। इस प्रकार महिलाओं को समान रूप से मत देने तथा चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त है।

संविधान के माध्यम से समानता को औपचारिक संरचना उपलब्ध कराने के साथ—साथ सरकार परिवर्तन और विकास लाने के लिए कानून को भी एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयोग करती रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही विशेष रूप से जवाहरलाल नेहरू ने, महिलाओं के विरुद्ध प्रचलित भेदभाव समाप्त करने के लिए

कानून बनाने की बात सोची। इस प्रकार विशेष विवाह अधिनियम 1954, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, हिन्दू अल्पआयु और संरक्षक अधिनियम 1956, हिन्दू दत्तक ग्रहण और अनुरक्षण अधिनियम, 1956, महिलाओं में अनैतिक व्यापार की समाप्ति अधिनियम, 1956 और दहेज निषेध अधिनियम 1961 जैसे अधिनियम बनाए गए। भारत में महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित समिति (1975) द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने और महिला आन्दोलन तथा संगठनों के उदय से 1970 और 1980 के दशक में कानून के क्षेत्र में और भी महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं।

इस दिशा में जो कानूनी व्यवस्था की गई उनमें चिकित्सा आधारित गर्भपात अधिनियम 1971, समान वेतन अधिनियम 1976, बाल विवाह प्रतिबंध (संशोधन) अधिनियम 1978 और अपराध कानून (संशोधन) अधिनियम 1983, परिवार न्यायालय अधिनियम 1984, अपराध कानून (द्वितीय संशोधन) अधिनियम 1985, दहेज निषेध (संशोधन) अधिनियम 1984 आदि प्रमुख हैं। इन अधिनियमों द्वारा लिंग के आधार पर रोजगार सम्बन्धी मामलों में महिलाओं के साथ भेदभाव को समाप्त कर दिया गया। बालिकाओं की शादी करने की उम्र को बढ़ाकर 18 वर्ष कर दिया गया, बलात्कार के मामले में साक्ष्य प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व अपराधी पर डाल दिया गया है और बलात्कार की सजा को कठोर कर दिया गया, पति अथवा सुसराल वालों द्वारा पत्नी के साथ निर्दयतापूर्वक व्यवहार को दंडनीय घोषित किया गया।

विधायिका द्वारा कानून बनाने के अतिरिक्त न्यायपालिका भी कुछ प्रचलित कानूनों की व्याख्या महिलाओं के पक्ष में करती रही है। नवम्बर 1995 में उच्चतम न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक फैसले में विधवा अथवा मृत व्यक्ति की पुत्री को उसकी सम्पत्ति में समान अधिकार दिया। इससे पहले दो अन्य मामलों में उच्चतम न्यायालय ने तलाकशुदा हिन्दू महिलाओं को उनके भरण-पोषण के लिए दी गई सम्पत्ति को बेचने, आय अर्जित करने या अपनी इच्छानुसार अन्य किसी प्रकार से प्रयोग करने की इजाजत दी और विधवा को भरण पोषण के रूप में दिए गए आवास पर पूर्ण मालिकाना अधिकार दिया। शाहबानों और अन्य ऐसे मामलों में न्यायपालिका द्वारा दिए

गए निर्णय इसलिए महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं क्योंकि इससे व्यक्तिगत कानून (Personal Law) में सुधार करने की न्यायपालिका की सक्रियता का पता लगता है।

विकास और कल्याण कार्यक्रम (Development and Welfare Programmes)

महिलाओं का विकास करने और उन्हें न्याय दिलाने के लिए किए गए प्रयास केवल कानून बनाने और कानून की उनके पक्ष में व्याख्या करने तक ही सीमित नहीं है। इस बात को भी मान्यता दी गई है और महसूस किया गया है कि महिलाओं की शिक्षा, दक्षता-विकास, प्रबन्ध, जैसे निवेशों तक पहुंच भी होनी चाहिए। इसके लिए सरकार द्वारा महिला विकास को पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल करने का प्रयास किया गया। महिलाओं के विकास से सम्बन्धित दृष्टिकोण को प्रथम पंचवर्षीय योजना में समुदाय विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत शामिल किया गया। तृतीय और चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में महिला शिक्षा कल्याण को उच्च प्राथमिकता दी गई। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में दृष्टिकोण को महिला कल्याण से हटाकर महिला-विकास पर केन्द्रित किया गया। छठी पंचवर्षीय योजना में महिला स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार पर बल दिया गया। सन् 1985 में महिलाओं को विशेष पहचान प्रदान करने और महिला और बाल विकास के लिए एक अलग विभाग स्थगित किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के लिए रोजगार के नए अवसर उपलब्ध कराने पर बल दिया और उन्हें देश के विकास के लिए निर्णायक संसाधन माना गया। आठवीं योजना में इस दृष्टिकोण को महिलाओं को शक्ति प्रदान कराने पर केन्द्रित किया गया।

सन् 1953 में भारत सरकार ने महिलाओं, बच्चों और सुविधाहीन वर्गों के कल्याण और विकास सेवाओं को बढ़ाने के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम चलाने हेतु केन्द्रित समाज बोर्ड स्थापित किया। इस बोर्ड के समान ही राज्यों में भी बोर्ड स्थापित किए गए हैं। सरकार के इस कार्यक्रम ने जहां एक ओर महिला संगठनों की संख्या में वृद्धि को प्रोत्साहित किया है वही दूसरी ओर पहले से सक्रिय महिला कार्यकर्ताओं को अधिक कुशलता से कार्य के अवसर प्रदान किए हैं। इसके फलस्वरूप बड़ी संख्या में महिला मंडलों का उद्भव हुआ है। कई राज्य सरकारों ने बालिकाओं के लिए माध्यमिक स्तर और कुछ मामलों में विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा निःशुल्क देने की व्यवस्था की है।

परिवार नियोजन और कल्याण कार्यक्रम भी महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से बनाए गए हैं।

महिलाओं को चुनावों में हिस्सा लेने और चुनाव लड़ने की स्वतन्त्रता और समानता का अधिकार दिए जाने के बावजूद निर्वाचित और निर्णय लेने वाले निकायों में महिलाओं का प्रतिशत बहुत कम ही नहीं रहा, बल्कि कुछ मामलों में यह शून्य भी रहा है। इस उद्देश्य के लिए स्थानीय स्वशासी निकायों में महिलाओं के लिए सीट आरक्षित करने के लिए सन् 1988 में पहल की गई। सन् 1992 में संविधान 73वां तथा 74वां संशोधन पारित किया गया। जिसमें पंचायती राज निकायों और नगरपालिकाओं में विभिन्न स्तरों पर महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने की व्यवस्था की गई। यही व्यवस्था संसद और राज्य विधान सभाओं में भी लागू करने का प्रस्ताव संसद पेश किया गया जो पास नहीं हो पाया।

भारत, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महिला विकास कार्यक्रमों में भाग लेती रही है और इन मंचों पर भारत ने अनेक प्रतिज्ञा पत्रों पर हस्ताक्षर भी दिए हैं। यहां पर यह उल्लेख करना सही होगा कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस दिशा में विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर लगातार प्रयास किए जाते रहे हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रयासों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

सन् 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने घोषणा पत्र में अनुच्छेद 8 में महिलाओं के प्रति भेदभाव न करने की प्रतीज्ञा की जिसमें कहा गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी निकायों में "किसी भी प्रकार से समानता की परिस्थितियों में" भेदभाव नहीं किया जाएगा। सन् 1946 में महिलाओं की परिस्थिति के सम्बन्ध में एक आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने अनेक घोषणाएं की, समागम आयोजित किए, विभिन्न मुद्दों की निगरानी की तथा महिला मुद्दों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सम्मेलनों के सचिवालय के रूप में काम किया। सन् 1967 में महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव बरतने वाले सभी साधनों को समाप्त करने के लिए घोषणा को स्वीकार किया गया। इसने वास्तविक जीवन में यथार्थ रूप में तथा कानूनी रूप से महिलाओं को समानता प्रदान कराने की अपील की।

सन् 1975 में संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा ने महिला मुद्दों पर प्रकाश डालने के लिए वर्ष 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा की। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के दौरान महिलाओं के सम्बन्ध में मैक्सिको में आयोजित प्रथम सम्मेलन में विश्व स्तर पर कार्यवाही योजना को अपनाया गया और यह घोषणा भी की गयी कि प्रथम दशक में महिलाओं को समानता, विकास और शांति प्रदान की जाएगी। आम सभा ने 1976 में महिलाओं के लिए स्वैच्छिक निधि की स्थापना की। सन् 1985 में इसमें विस्तार करके इसे संयुक्त राष्ट्र महिला विकास निधि में परिवर्तित किया गया। महिलाओं के सम्बन्ध में दूसरा सम्मेलन सन् 1980 में कोपेनहेग में, तीसरा सन् 1985 में नौरोबी में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में सन् 2000 तक महिला विकास के सम्बन्ध में रणनीति तैयार की गई। पर्यावरण और विकास विषय पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् 1992 के सम्मेलन में स्वीकार किया गया कि महिलाएं पर्यावरण विकास और सामाजिक परिवर्तन से केवल अधिक प्रभावित ही नहीं हैं बल्कि वह इस क्षेत्र में सुधार के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सहयोग दे सकती हैं। सन् 1993 में विआना में मानव अधिकार पर आयोजित विश्व सम्मेलन में महिलाओं पर अत्याचार और अन्य महिला मानव अधिकार मुद्दों को संयुक्त राष्ट्र के सभी मानव अधिकारों से सम्बन्धित मुद्दों से ऊपर रखा गया।

सन् 1994 में जनसंख्या और विकास विषय पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पहली बार लैंगिक समानता और शिक्षा के माध्यम से महिलाओं को शक्तिशाली बनाने पर विचार किया गया तथा स्वस्थ और पोषण को परिवार नियोजन जैसे परम्परागत सम्बन्धी मुद्दों से जोड़ा गया। सन् 1995 में बीजिंग में महिलाओं से सम्बन्धित विश्व सम्मेलन में 12 चिन्तनाजनक विषयों की समीक्षा की गई और उन पर वार्तालाप किया गया है और कार्यवाही के लिए एक नया मंच बनाया गया। भारत इन सभी मुद्दों में समान रूप से भागीदार है।

4.4.4 निष्कर्ष

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए कई परिवर्तन किए गए हैं। विशेष रूप से महिलाओं

को पुरुषों से समानता प्रदान कराने के प्रयास किए गए हैं। वर्तमान समय में भारत में महिलाओं को कानून तथा संविधान द्वारा पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। महिलाओं को अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने और प्रशिक्षण लेने की स्वतंत्रता प्राप्त है। वे किसी भी प्रकार की विशेषज्ञता और उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। लेकिन जब हम समाज की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करते हैं, तो हम पाते हैं कि शहरी शिक्षित महिलाओं का एक छोटा सा वर्ग ही इन कानूनों और विकासीय कार्यक्रमों से लाभान्वित हुआ है। समाज में लिंग-भेद न केवल जारी है। अपितु कुछ स्थानों और अवसरों पर महिलाओं के प्रति हिंसा और अपराध की प्रवृत्ति में भयंकर वृद्धि हुई है।

4.4.5 मुख्य शब्दावली

- औपनिवेशिक काल : जब भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था।
- मानवीय स्थितियां : एक मनुष्य होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति की वो मूलभूत आवश्यकताएं जो उसके जीवन और विकास के लिए आवश्यक हैं।

4.4.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. महिला सशक्तिकरण पर निबन्ध लिखें।
2. भारत में महिलाओं की स्थिति पर नोट लिखें।
3. भारत में महिला सशक्तिकरण के लिए किस तरह के प्रयास किए गए हैं। वर्णन कीजिए।
4. भारत में महिलाओं की राजनीति में क्या भूमिका है ? इसे किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है।
5. भारत में महिलाओं की स्थिति कैसी है। इसमें कैसे सुधार किया जा सकता है।

4.4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, "दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया", पैनेटिश हॉल प्रेस, नई दिल्ली, 1994

- ग्रेनविल आस्टिन, "इण्डियन कान्स्टीट्यूशन", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, "कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, "दा ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया", प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, "डायनामिक्स ऑफ इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पालिटिक्स", स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, "स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग", एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, "दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस", सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, "दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फ़ैडरलिज्म", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश, "पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेण्डन्स", II एडिशन, केंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, केंब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियॉड सैक्युरेलिज्म : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्डोरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, "डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस," एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, "स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया", वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998

- अतुल कोहली, "डेमोक्रेसी एण्ड डिशकनटेन्ट : इण्डियाज ग्राईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, "दा सक्शेश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेसी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, "पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, "कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, "इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, "तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.5 दलित (Dalits)

4.5.1 परिचय

विश्व के प्रत्येक देश में ऐसे असंख्य लोग रहते हैं जो सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक आदि दृष्टि से समाज के अन्य वर्गों से पिछड़े हुए होते हैं। ये लोग समाज के अन्य सशक्त वर्गों के लोगों द्वारा कुचले हुए या शोषित होते हैं। ये लोग किसी जाति धर्म, वर्ग या रंग के नहीं होते बल्कि सामूहिक रूप से समाज के उपेक्षित और पिछड़े हुए व्यक्ति होते हैं। इन्हीं लोगों को भारत में दलित कहा जाता है। बी०आर० अम्बेडकर ने इन्हें 'टूटे हुए व्यक्ति' (Broken Men) कहा है। महात्मा गांधी ने इन्हें हरिजन (Harijans) कहा है। भारत के संविधान में इन्हें अनुसूचित जातियों के रूप में मान्यता दी है। दलित शब्द हिब्रू (Hobriu) भाषा के डाल (Dall) के सदृश है। जिसका अर्थ कुचला हुआ या दबा हुआ। दलित शब्द का भावार्थ यह निकलता है कि समाज का वह वर्ग जिसको समाज के उच्च वर्गों द्वारा शोषित किया गया हो, जिसके प्रमुख अधिकार एवं स्वतंत्रताएं छीन ली गई हो, जिसको शूद्र या नीच समझा जाता हो या जिसको उपेक्षित कर दिया गया हो। स्पष्ट है कि दलित समाज का वह वर्ग है जिसको उच्च वर्गों द्वारा उपेक्षित, शोषित या कुचला गया हो। इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप से केवल जाति, जन्म या रंग के आधार पर किसी व्यक्ति को दलित नहीं माना जा सकता। यदि कोई व्यक्ति तथा कथित निम्न जाति से सम्बन्ध रखता है या जन्म लेता है, परन्तु उसके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया जाता तो उसे दलित नहीं कहा जा सकता।

दलित कोई जाति नहीं है, दलित क्रान्ति और परिवर्तन का प्रतीक है। दलित मानवतावाद में विश्वास करता है। वह ईश्वर के अस्तित्व, पुर्नजन्म, आत्मा, पवित्र पुस्तकों आदि को नहीं मानता क्योंकि इन्होंने भेदभाव, भाग्यवाद और परलोकवाद सिखाया है और उसे दास बनाया है। वह अपने देश में शोषित व्यक्ति का प्रतिनिधित्व

करता है। परन्तु भारतीय समाज में दलित जातीयता का पर्याय बन गया है। यहाँ दलित शब्द साफ तौर पर पिछड़ी हुई व निम्न जातियों की ओर संकेत करता है। जबकि वस्तुस्थिति यह है कि दलित वर्ग में किसी जाति या वर्ग विशेष के शामिल नहीं किया जाता बल्कि सामूहिक रूप से समाज की पिछड़ी हुई जातियों के लोगों को शामिल किया जाता है। इसमें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों, पिछड़ी जातियों व अनुसूचित कबीलों के व्यक्ति शामिल किए जाते हैं।

स्वतन्त्रता से पहले भारतीय राजनीति में दलितों का प्रयोग इतना व्यापक तौर पर नहीं किया जाता था क्योंकि सभी राजनीतिक दलों व नेताओं का एक मात्र उद्देश्य ब्रिटिश दासता में मुक्ति था। प्रत्येक दल व नेता अपने आपको दलितों का सच्चा मसीहा साबित करने का प्रयास कर रहा है। राजनीतिक दलों और नेताओं द्वारा दलितों के हितों की अनदेखी करने के आरोप-प्रत्यारोप लगाए जाते हैं। भारतीय राजनीति में दलितों का एक महत्वपूर्ण वोट बैंक समझा जाता है। इस वोट बैंक पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए अनेक दल और नेता अनेक दांव-पेच अपनाते रहते हैं। दलितों के लिए अधिक आरक्षण की लगातार मांग करना भी दलित राजनीति का ही एक पहलू है दलितों के राजनीतिक प्रयोग के कारण जहाँ एक ओर दलितों में राजनीतिक चेतना आई है वही इससे नवीन नेता भी उभरकर सामने आए हैं। इसके परिणामस्वरूप दलितों के नए अभिजन पनपे हैं। स्पष्ट तौर पर दलित राजनीति ने भारतीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक व शैक्षणिक ढांचे को प्रत्येक पक्ष से प्रभावित किया है।

4.5.2 उद्देश्य

- दलित कौन है या किसे दलित कहा जा सकता है
- दलितों की भारत में क्या दशा है
- दलितों को ऊपर उठाने के लिए क्या-क्या कदम उठाए गए हैं
- भारतीय राजनीति को दलित मुद्दे कैसे प्रभावित करते हैं

4.5.3 दलित मुद्दे एवं आरक्षण का प्रावधान

कृष्ण विद्वान दलित राजनीति की जड़े संविधान में दिए गए आरक्षण के प्रावधानों में निहित मानते हैं। शुरु से ही आरक्षण की व्यवस्था विवाद का विषय रही है। यद्यपि दलितों, पिछड़ों आदि के आरक्षण के लिए एकमात्र उद्देश्य यह था कि इन वर्गों का समुचित विकास किया जाए ताकि वे वर्ग अन्य उच्च वर्गों के समान ही सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकें। आजादी के बाद भी आरक्षण की व्यवस्था के आशतीत परिणाम नहीं निकले हैं। आरक्षण की व्यवस्था एक चुनौती के रूप में हमारे सामने आई है जिसने समाज के बुद्धिजीवियों तथा सभी विचारशील व्यक्तियों को विभाजित कर दिया है। ऐसा नहीं है कि आरक्षण की व्यवस्था निष्प्रभावी रही हो। वास्तविकता तो यह है कि आरक्षण की व्यवस्था ने भारतीय समाज को राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक इत्यादि प्रत्येक दृष्टि से प्रभावित किया है। आरक्षण की व्यवस्था ने भारतीय समाज पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रभाव डाले हैं।

सकारात्मक प्रभाव : आरक्षण व्यवस्था के सकारात्मक प्रभाव निम्नलिखित हैं –

सामाजिक स्तर में सुधार

आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप कमजोर वर्ग के व्यक्ति सार्वजनिक सेवाओं में उच्चतम सेवाओं में उच्चतम पदों पर भी पहुंचने में सफल हो पाए हैं। आज विभिन्न उच्च प्रशासनिक सेवाओं में कमजोर वर्गों के अनेक व्यक्ति कार्यरत हैं। इससे इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है। इन वर्गों के व्यक्ति भी अब उच्च वर्गों की ही तरह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक इत्यादि सुविधाओं का लाभ उठाने में सक्षम हो सके हैं। इन कमजोर वर्गों के लोगों के साथ अछूतों जैसा अमानवीय व्यवहार करने वाले उच्च वर्ग के लोग भी अब इनके साथ समानता का व्यवहार करने लगे हैं। इस प्रकार आरक्षण की राजनीति ने कमजोर वर्गों के सामाजिक स्तर में सुधार किया है।

राजनीतिक चेतना में वृद्धि

आरक्षण के परिणामस्वरूप कमजोर वर्गों को अनेक सुविधाएं प्राप्त हो सकी हैं। जहां इनका आर्थिक एवं सामाजिक विकास हुआ है वहीं इनका शैक्षणिक विकास भी हुआ हो इससे इन वर्गों में राजनीतिक चेतना आई है। अब राजनीति को प्रभावित करने

में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे हैं। निःसन्देह आरक्षण के कारण ही दलितों की राजनीति को बढ़ावा मिला है।

राजनीतिक भागीदारी बढ़ी है

पहले इन वर्गों को राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय तौर पर भागीदारी निभाने से रोका जाता था। आरक्षण की व्यवस्था के परिणामस्वरूप इन कमजोर वर्गों को भी राजनीति में अपनी सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर मिला है। आजकल आरक्षण की व्यवस्था लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं के लिए की गई है। यह आरक्षण की नीति का ही प्रभाव है कि आज अनेक राजनीतिक नेता इन्हीं कमजोर वर्गों से आ रहे हैं। इस वर्ग में राजनीतिक चेतना आई है जिससे यह वर्ग राजनीतिक में अपनी सक्रिय भागीदारी निभाने लगा है।

कमजोर वर्गों में शिक्षा के प्रति जागृति आई है

आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप ही आज कमजोर वर्ग शिक्षा के प्रति आकर्षित हुआ है। जिस कमजोर वर्ग को शताब्दियों से शिक्षा से वंचित किया जाता रहा था वही वर्ग आज उच्च शिक्षा प्राप्त करके अन्यो को ज्ञान दे रहा है। कमजोर वर्गों से आज अनेक डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, अध्यापक आदि निकल रहे हैं। यह सब आरक्षण की व्यवस्था का ही सकारात्मक प्रभाव है।

कमजोर वर्ग समाज की मुख्य धारा से जुड़ पाए हैं

आरक्षण की राजनीति का एक सकारात्मक प्रभाव यह भी पड़ा है कि इससे समाज के वे कमजोर वर्ग जो एक लम्बे समय तक शोषित, दलित, दुर्व्यवहार ग्रस्त और उपेक्षा के शिकार रहे और जो समाज की मुख्य धारा से कटे रहे, को समाज का पुनः अभिन्न अंग समझा जाने लगा और उन्हें पुनः सामाजिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा है। इस बात में पर्याप्त सच्चाई है कि कमजोर वर्गों के उच्च पद प्राप्त व्यक्तियों का काफी सम्मान किया जाता है। यह सब आरक्षण की राजनीति का ही प्रभाव है।

कमजोर वर्गों का आर्थिक विकास होना

शुरू में आर्थिक विकास के सभी साधनों पर उच्च वर्ग का ही एकाधिकार था। कमजोर एवं निम्न वर्ग के लोग उद्योग एवं व्यवसाय स्थापित नहीं कर सकते थे जिसके परिणामस्वरूप ये वर्ग आर्थिक रूप से अत्यन्त दयनीय बन गए थे। लेकिन आरक्षण की व्यवस्था से इन वर्गों के लिए आर्थिक विकास के अनेक अवसर खुल गए। इन वर्गों के लोग भी अब मन चाहे उद्योग-धन्धे स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार इन वर्गों का आर्थिक विकास हुआ है।

लोक सेवाओं में पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा जन-जातियों को प्रतिनिधित्व बढ़ाना

समाज के पिछड़े वर्ग एक लम्बे समय तक सार्वजनिक सेवाओं से दूर रहे क्योंकि ये वर्ग शैक्षणिक दृष्टि से अत्यन्त कमजोर थे। लेकिन आरक्षण की राजनीति के माध्यम से इन वर्गों को अनेक शैक्षणिक सुविधाएं प्रदान की गईं जिसके परिणामस्वरूप इन वर्गों का लोक सेवाओं में प्रतिनिधित्व बढ़ा है। आजकल अनेक सार्वजनिक पदों पर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों कबीलों के लोग नियुक्त हैं।

नकारात्मक प्रभाव : आरक्षण व्यवस्था के नकारात्मक प्रभाव निम्नलिखित हैं –

प्रशासन में जातिवाद को बढ़ावा मिलना

चूंकि आरक्षण का लाभ कुछ विशेष दलित जातियों को ही मिला है, अतः इससे जातिवाद की व्यवस्था को और भी अधिक बढ़ावा मिला है। जातिवाद प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में दाखिल हो गया है। इतना ही नहीं जातिवाद ने राजनीति का जातीयकरण किया है, चुनावों के समय उम्मीदवार के चयन में उसकी भूमिका विशेष महत्व रखती है। प्रायः दलित बाहुल्य वाले क्षेत्र में दलित जाति के ही किसी उम्मीदवार को चुनाव में खड़ा किया जाता है। चुनावों के बाद मन्त्रिमण्डल के गठन में भी उम्मीदवारों की जाति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रायः सभी राजनीतिक दलों के नेता अपने आपको दलित वर्ग के उच्चे हितैषी कहते हैं। इस प्रकार दलितों को प्रदान की गई सुविधाओं में राजनीति एवं प्रशासन का जातीयकरण किया है।

दलितों के अभिजन वर्ग का उदय

दलितों और पिछड़े वर्गों की राजनीति से इस वर्ग में भी नए विशिष्ट वर्ग (Elite Class) बनने लगे हैं। यद्यपि आरक्षण की व्यवस्था इन वर्गों के सभी लोगों के लिए की गई थी लेकिन इसका लाभ इन वर्गों के कुछ एक व्यक्ति हो उठा पाए हैं। इन थोड़े से लोगों ने ही राजनीतिक आर्थिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्र में प्रवेश किया है। इन्होंने आरक्षण से मिलने वाले लाभों व सुविधाओं को अपने तक ही सीमित कर लिया है। विशेषतौर से आरक्षण का लाभ अब वे ही व्यक्ति उठा रहे हैं जो अन्य दलितों से उच्चे हैं। यह उच्च दलित वर्ग राजनीति में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इनका रहन-सहन किसी भी तरह से अन्य उच्च वर्ग से कम नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार आरक्षण के परिणामस्वरूप दलित वर्ग में एक नया विशिष्ट वर्ग उभरा है। इस नए विशिष्ट वर्ग ने आरक्षण के सारे लाभ अपने सम्बन्धियों, शिष्टेदारों, मित्रों आदि के लिए सुरक्षित रख लिए हैं। दलितों में आज भी एक ऐसा बड़ा वर्ग है जो आरक्षण की सुविधाओं से कोसों दूर है।

राजनीतिक दल तथा दबाव समूह जाति पर आधारित बनने लगे हैं

भारतीय राजनीति में पिछड़े वर्गों का एक लम्बे समय तक मात्र एक वोट बैंक के रूप में प्रयोग किया गया है। इन वर्गों को मात्र राजनीति में वोट डालने के लिए ही प्रयोग किया जाता रहा। लेकिन आरक्षण की व्यवस्था के परिणामस्वरूप पिछड़े वर्गों में भी चेतना आई है और इनकी राजनीतिक भागेदारी बढ़ी है। ये वर्ग अब अन्य वर्ग के प्रतिनिधियों को चुनने अथवा शासक बनने की अपेक्षा अपने प्रतिनिधि चुनते हैं। ये वर्ग अब राजनीतिक शक्ति को अपने हाथों में लेने के लिए प्रयास कर रहे हैं। अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ (All India Scheduled Castes Federation) पिछड़े वर्गों का ही एक दबाव समूह माना जाता है। बहुजन समाज पार्टी को भी पिछड़े वर्गों की पार्टी माना जाता है और इस पार्टी ने दलितों के संगठित करने का प्रयास किया है।

आरक्षण के कारण मतदान व्यवहार पर प्रभाव पड़ना

पिछड़े वर्गों की राजनीति के परिणामस्वरूप मतदान व्यवहार पर भी काफी प्रभाव पड़ा है। एक तरफ से दलितों की राजनीति मतदान व्यवहार का एक प्रमुख निर्धारक

तत्व बन गई है। दलित वर्ग अब उस राजनीतिक दल को अपना वोट देना पसन्द करते हैं। जो उनके हितों की पूर्ति अच्छी प्रकार कर सकें। दूसरी और राजनीतिक दल भी चुनाव प्रचार के दौरान पिछड़े वर्गों की भावनाओं को उत्तेजित करते हैं। पिछड़े वर्गों की राजनीति से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित कबीलों के लोगों के मतदान व्यवहार पर ही प्रभाव नहीं पड़ा है। बल्कि अन्य उच्च जातियों के लोगों का मतदान व्यवहार भी प्रभावित हुआ है।

पिछड़े वर्गों का वोट बैंक के रूप में प्रयोग

दलितों की राजनीति का प्रभाव यह पड़ा है कि इससे दलितों को वोट बैंक के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है। कांग्रेस पार्टी ने अपने लम्बे शासन में पिछड़े वर्गों को एक वोट बैंक से ज्यादा कभी कुछ नहीं समझा। कांग्रेस पार्टी ही नहीं बल्कि अन्य पार्टियां भी अपने आपको पिछड़े वर्गों का हितैषी बताती है। लेकिन ये अब पिछड़े वर्गों को वास्तव में एक वोट बैंक के रूप में ही प्रयोग कर रही है। अनेक राजनीतिक पार्टियां तथा उनके नेता पिछड़े वर्गों को विभिन्न सुविधाएं उपलब्ध कराने का वचन देते हैं। लेकिन चुनावों के बाद राजनीतिक दल इन वर्गों को भूल जाते हैं। इस प्रकार आरक्षण की व्यवस्था अथवा दलितों की राजनीति ने पिछड़े वर्ग को एक वोट बैंक बनाया है।

आरक्षण का विरोध

यह स्पष्ट है कि आरक्षण की व्यवस्था का लाभ कुछेक पिछड़ी जातियों को ही मिला है। इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप निम्न जातियों के लोग सभी क्षेत्रों में उच्च पदों को प्राप्त कर रहे हैं। इतना ही नहीं अनेक राजनीतिक दल पिछड़े वर्गों के लिए और भी अधिक आरक्षण की व्यवस्था करना चाहते हैं। दूसरी ओर इन वर्गों को मिलने वाली आरक्षण की सुविधाओं ने उच्च वर्गों के युवाओं में तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न की है जहाँ निम्न वर्गों के विद्यार्थी आरक्षण के कारण सफलता से उच्च शिक्षण संस्थाओं अथवा सरकारी सेवाओं में प्रवेश पा जाते हैं वहीं उच्च वर्ग के बहुत से प्रतिभाशाली युवक इससे वंचित रह जाते हैं। अतः उच्च वर्ग आरक्षण की व्यवस्था को द्वेष से रोकता है और इसे समाप्त करना चाहता है।

लोक सेवाओं के स्तर का पतन

दलित अथवा कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था के परिणामस्वरूप ही जहां इन वर्गों के सामान्य बुद्धि वाले अभ्यर्थी (Candidate) लोक सेवा में स्थान पा जाते हैं, वहीं दूसरी और उच्च वर्गों के अनेक प्रतिभावान नवयुवक एवं नवयुवतियां इससे वंचित रह जाते हैं। अधिक संख्या में निम्न वर्गों से लोक सेवाओं में अभ्यर्थी जाने से इन सेवाओं का स्तर गिरा है दलित राजनीति चाहे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों कबीलों आदि को लोकसेवाओं में अधिक प्रतिनिधित्व दिलाने में सफल हुई है। लेकिन इससे लोक सेवाओं के स्तर में गिरावट आई है।

निम्न वर्गों की सरकार पर निर्भरता बढ़ना

दलित राजनीति के परिणामस्वरूप दलित वर्गों की सरकार पर निर्भरता बढ़ गई है। ये जातियां स्वेच्छा से अपना विकास करने की अपेक्षा सरकार से आरक्षण के माध्यम से अधिक सुविधाओं को उठाना चाहती है। निम्न जातियां आरक्षण को अपने विकास की एक सीढ़ी मानती हैं। इसके सहारे विकास करना चाहती हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में ये वर्ग सरकार पर अधिक निर्भर हो गए हैं।

4.5.4 निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दलित राजनीति ने आरक्षण के माध्यम से भारतीय समाज पर नकारात्मक और सकारात्मक दोनों ही प्रभाव डाले हैं। हालांकि वर्तमान में तेजी से आगे बढ़ती दलित राजनीति में ठहराव सा आ गया है, क्योंकि दलित राजनीति को आगे बढ़ाने के लिए दलितों के कल्याण के लिए ठोस कार्य किए जाने चाहिए। दलित नेताओं के नाम पर पार्क बनाने, दलित नेताओं की मूर्तियाँ स्थापित करने, पार्टी के चुनाव-चिन्हों की विशाल प्रतिमाएँ लगाने से दलितों का कल्याण नहीं हो सकता है। दलित राजनीति को आगे ले जाने के लिए दलितों के कल्याण के लिए योजनाएं बनाना आवश्यक है।

4.5.5 मुख्य शब्द

- राजनीतिक चेतना : राजनीतिक अधिकारों का ज्ञान होना।

- अभिजन वर्ग : जिस वर्ग का राजनीतिक सत्ता और आर्थिक शक्ति पर आधिपत्य होता है, उसे अभिजन वर्ग कहा जाता है।

4.5.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में दलित राजनीति के विभिन्न कारकों की समीक्षा कीजिए।
2. दलित राजनीति पर एक लेख लिखिए।
3. भारत में दलित आन्दोलनों पर निबन्ध लिखिए।
4. भारत में दलित आन्दोलनों के जन्म के कारणों पर प्रकाश डालिए।
5. भारत में दलित राजनीति के उदय का वर्णन कीजिए।

4.5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, "दा गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया", पैनिटिश हॉल प्रेस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, "इण्डियन कान्स्टीट्यूशन", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966
- रजनी कोठारी, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, "कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, "दा ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया", प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957
- जे०आर० सिवाच, "डायनामिक्स ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स", स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, "स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग", एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976

- सी०पी० भाम्भरी, "दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस", सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, "दा फाँउडेशन ऑफ इण्डियन फ़ैडरलिज्म", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश, "पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्स", II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियॉड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्डोरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, "डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस," एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, "स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया", वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, "डैमोक्रेसी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, "दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेसी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, "पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, "कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977

- अब्बास, "इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, "तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.6 क्षेत्रीयतावाद (Regionalism)

4.6.1 परिचय

क्षेत्रीयतावाद ने भारतीय राजनैतिक व्यवस्था को बहुत अधिक प्रभावित किया है। पंजाब की समस्या क्षेत्रीयतावाद की एक बहुत ही महत्वपूर्ण समस्या बनकर उभरी थी जो राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा बन गई थी। डॉ० इकबाल नारायण का कथन है कि “भारतीय राजनीति का एक प्रमुख निर्धारक तत्व क्षेत्रीयतावाद है जिसके कारण लोक भारतीय संघ की तुलना में उस क्षेत्र या राज्य विशेष को महत्व देते हैं जिसमें वे रहते हैं।”

क्षेत्रवाद से तात्पर्य है एक देश में या देश के किसी भाग में उस छोटे से क्षेत्र से है जो आर्थिक, भौगोलिक, सामाजिक आदि कारणों से अपने पृथक अस्तित्व के लिए जागरूक है। साधारण शब्दों में क्षेत्रवाद का अर्थ किसी क्षेत्र के लोगों की उस भावना एवं प्रयत्नों से है जिनके द्वारा वे अपने क्षेत्र विशेष के लिए आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक शक्तियों में वृद्धि चाहते हैं।

भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में क्षेत्रीयतावाद से अभिप्राय है – राष्ट्र की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य या प्रान्त की अपेक्षा एक छोटे क्षेत्र से लगाव, उसके प्रति भक्ति या विशेष आकर्षण दिखाना। इस दृष्टि से क्षेत्रीयतावाद राष्ट्रीयता की वृहद् भावना का विलोम है और इसका ध्येय संकुचित स्वार्थों की पूर्ति होना है, भारतीय राजनीति के सन्दर्भ में यह एक ऐसी धारणा है जो भाषा, धर्म, क्षेत्र आदि पर आधारित है और जो विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती है। क्षेत्रीयता की भावना सारे देश में व्याप्त है जो कि प्रायः सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित आन्दोलनों तथा अभियानों के रूप में प्रकट होती हैं।

4.6.2 उद्देश्य

- क्षेत्रवाद का अर्थ जानना

- क्षेत्रवाद के क्या कारण है
- भारतीय राजनीति को क्षेत्रवाद कैसे प्रभावित करता है
- क्या क्षेत्रवाद राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा है

4.6.3 क्षेत्रीयतावाद के कारण (Causes of Regionalism)

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं –

1. **भौगोलिक** : भौगोलिक दृष्टि से भारत के कई राज्य आज भी बहुत बड़े हैं। इन बड़े राज्यों, जैसे मध्यप्रदेश में छोटे-छोटे महत्वपूर्ण क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इकाई बन सकते हैं। राजस्थान में मारवाड़ तथा मेवाड़ का क्षेत्र को यदि पृथक् राज्यों का दर्जा दे दिया जाए तो भी वे केरल, नागालैण्ड से तो बड़े राज्य ही बनेंगे।
2. **सांस्कृतिक** : कुछ राज्यों में कई भाषा भाषी एवं संस्कृति के लोग रहते हैं। उन्हें अपनी भाषा एवं संस्कृति पर गर्व है। इसी आधार पर द्रविड़ मुन्त्र कड्गम ने भारतीय संघ से अलग होने की बात कही थी।
3. **ऐतिहासिक** : राज्य पुनर्गठन के बाद कई पुरानी रियासतों को राज्यों में मिला दिया गया था। आज भी इन रियासतों के लोग यह महसूस करते हैं कि यदि उनकी रियासत का ही पृथक् राज्य होता तो व अधिक लाभ की स्थिति में होते। केवल ऐतिहासिक सम्बन्धों के आधार पर ही पुराने क्षेत्रों की चर्चा की जाती है। दूसरे शब्दों में, सारे भारत का इतिहास सामान्य न होकर क्षेत्रों के आधार पर भिन्न है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक विरासत लोक परम्पराओं, सामाजिक मिथकों तथा लक्षणों (Symbolism) के आधार पर क्षेत्रवाद के अस्तित्व को सहायता मिलती है।
4. **आर्थिक कारण** : भारत के कुछ राज्यों में अधिक आर्थिक विकास हुआ और आर्थिक विकास की दृष्टि से कुछ क्षेत्र पिछड़ गए। इससे इन पिछड़े क्षेत्रों में असन्तोष फैलने लगा और क्षेत्रीयतावाद की भावना फैलने लगी। उदाहरण के तौर पर आन्ध्रप्रदेश में तेलंगाना का क्षेत्र, राजस्थान में दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान,

- महाराष्ट्र में विदर्भ में तेज रफ्तार से विकास नहीं हो पाया और वे अपने लिए पृथक राज्य की मांग करने लगे।
5. **भाषा** : भारत में भाषागत विविधता रही है। उत्तर और दक्षिण की भाषा एक-दूसरे से भिन्न रहती है। भाषा को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति बढ़ी। भाषा को प्रश्न को लेकर उत्तर तथा दक्षिण राज्यों में हिंसात्मक आन्दोलन हुए और राष्ट्रीय एकता संकट में पड़ गयी।
 6. **धार्मिक कारण** : क्षेत्रीयतावाद के विकास में धर्म की भी प्रधानता रही है। उदाहरण के लिए पंजाब में खालिस्तान की मांग बहुत सीमा तक धर्म पर आधारित है।
 7. **अन्तर्राज्यीय विवाद** : राज्यों के आपसी विवाद भी क्षेत्रीयता की भावना को बढ़ाने में सहायक हुए हैं। उदाहरण के तौर पर चंडीगढ़ के विषय पर हरियाणा और पंजाब में तनाव पूर्ण स्थिति पैदा हो गई है। दोनों ही राज्यों की जनता ने अपने-अपने क्षेत्रों में आन्दोलन चलाए जिससे की वातावरण काफी अशान्त हो गया है। नर्मदा नदी के जल-प्रयोग के कारण मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरात के मध्य काफी तनावपूर्ण स्थिति रही। भाखड़ा जल-विद्युत के प्रयोग के लिए पंजाब और हरियाणा तथा पंजाब और राजस्थान में संघर्ष चल रहा है। कहने का अर्थ यह है कि राज्यों के आपसी विवाद भी क्षेत्रीयता की भावनाओं को बढ़ाते हैं।
 8. **राजनैतिक कारण** : क्षेत्रीयतावाद के जन्म के कारणों में राजनीतिज्ञों की भी मुख्य हाथ रहा है। वे सोचते हैं कि यदि अलग राज्य की स्थापना कर दी जाएगी तो सत्ता उनके हाथों में आ जाएगी। इसी उद्देश्य के कारण उत्तरप्रदेश को विभाजित करने की मांग समय-समय पर उठती रहती थी।

भारत में क्षेत्रीयतावाद

भारत में स्वतंत्रता के बाद राजनीति में जो प्रश्न उभरे हैं, उनमें क्षेत्रीयतावाद का प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। 1950 से लेकर आज तक क्षेत्रीयतावाद की समस्या भारत सरकार को घेरे हुए है और विभिन्न क्षेत्रों में आन्दोलन चलते हैं। भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावाद की चर्चा निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर की जा सकती है –

1. भारतीय संघ से पृथक होने की मांग
2. पृथक राज्यत्व को प्राप्त करने की मांग
3. पूर्ण राजस्व को प्राप्त करने की मांग
4. अन्तर्राज्यीय विवाद
5. राज्य के लोगों के हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन

(1) भारतीय संघ से पृथक होने की मांग

कई बार क्षेत्रीय आन्दोलन संघ से अलग होने के लिए किए जाते रहे हैं।

1. **तमिलनाडु में आन्दोलन :** संघ से अलग होने की आवाज मद्रास राज्य के लोगों ने उठाई। 1960 में डी०एम०के० तथा अन्य तमिल दलों ने इस मांग को पूरा करवाने के लिए व्यापक आन्दोलन संगठित किया। 1962 के चुनाव में डी०एम०के० दल को मद्रास विधानसभा में 50 स्थान प्राप्त हुए, जबकि 1957 के चुनाव में इस दल को 15 स्थान प्राप्त हुए। डी०एम०के० दल के नेता अन्नादुराई ने संघ से अलग होने की मांग को दोहराया। स्वर्गीय प्रधानमंत्री नेहरू ने इस मांग को अनुचित बताया। मद्रास के वातावरण को देखते हुए संसद ने 1963 में संविधान में 16वां संशोधन किया। इस संशोधन के अनुसार संसद को अधिकार दिया गया कि वह भारत की प्रभुसत्ता को ललकारने वाले व्यक्ति को सजा देने के लिए कानून बनाए। इस संशोधन के अनुसार संसद तथा अन्य विधानसभा के चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को संविधान के प्रति और राष्ट्र की प्रभुसत्ता व एकता को बनाए रखने के लिए शपथ लेनी होगी। इस संशोधन के फलस्वरूप डी०एम०के० ने भारत से अलग होने की मांग को छोड़ दिया। परन्तु 1971 में तमिलनाडु (मद्रास) के मुख्यमंत्री करुणानिधि ने कहा कि तमिलनाडु का भारत से अलग होना निश्चित एवं अनिवार्य है।
2. **पंजाब आन्दोलन :** मद्रास राज्य की तरह पंजाब में मास्टर तारा सिंह ने पंजाब को एक अलग सिख राज्य बनाने की मांग रखी। 1950 से लेकर 1966 तक अकाली दल ने पंजाबी सूबा बनाने के लिए कई आन्दोलन चलाए। 1 नवम्बर, 1966 को पंजाब का पुनर्गठन करके पंजाब और हरियाणा दो राज्यों की स्थापना

की गइ। 1971 में डॉ० जगजीत सिंह ने खालिस्तान की मांग को दोहराया जिसकी पंजाब के नेताओं ने कड़ी आलोचना की। 1973 में पास किए गए आनन्दपुर प्रस्ताव के आधार पर अकाली दल ने भारत के भीतर ऐसे सिख राज्य की स्थापना की मांग की जिसमें चार विषयों—प्रतिरक्षा, विदेशी मामलें, मुद्रा और यातायात व संचार साधनों को छोड़कर अन्य सभी विषय राज्य सरकार को सौंप देने चाहिए। अपनी इस मांग को पूरा करवाने के लिए अकाली दल के एक धड़े ने जत्थेदार जगदेव सिंह के नेतृत्व में आन्दोलन चलाया इस आन्दोलन के अतिरिक्त 8 अगस्त, 1982 को एक अन्य आन्दोलन अमृतसर में अकाली दल ने शुरू किया। इस आन्दोलन में दमदमी टकसाल के मुखिया संत जरनैल सिंह भिंडरावाले और उसके समर्थक भी शामिल थे। जून 1984 में सरकार को विवश होकर आतंकवादियों को पकड़ने के लिए स्वर्ण मन्दिर परिसर में तथा अन्य स्थानों पर सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी। जुलाई 1985 में शिरोमणी अकाली दल के प्रधान संत हरचंद सिंह लौगोवाल और प्रधानमंत्री राजीव गांधी में एक समझौता हुआ जिसको पंजाब समझौता कहा जाता है।

3. **मिजो आन्दोलन** : असम के मिजो हिल (Miza Hill) जिले के लोगों ने भारत से अलग होने की मांग की और इस मांग को पूरा करवाने के लिए उन्होंने Mizo National Front (M.N.F.) की स्थापना की चीन के आक्रमण के समय (M.N.F.) इस को अवैध घोषित कर दिया और मिजो हिल (Mizo Hills) को संघीय क्षेत्र (Union Fintry) बना दिया गया। इस संघीय क्षेत्र को मिजोरम (Mizoram) का नाम दिया गया और इसका उद्घाटन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने 21 जनवरी, 1972 को किया। मिजो नेशनल फ्रन्ट ने लालडेंगा के नेतृत्व में स्वतंत्रता मिजोरम के लिए अपनी आतंकवादी गतिविधियाँ जारी रखी। 1972 में लालडेंगा इंग्लैण्ड भाग गए और वहाँ से मिजो नेशनल फ्रन्ट को निर्देश देते रहे। 1976 और 1980 में लालडेंगा के समझौते के लिए बातचीत हुई तो विफल रही। तीसरी बार बातचीत अक्टूबर 1984 में शुरू हुई और 25 जून 1986 के

- केन्द्रीय सरकार और मिजो फ्रन्ट में समझौता हुआ और लालडेंगा को मुख्यमंत्री बनाया गया और 1987 में मिजोरम को पूर्ण राज्य बनाया गया।
4. **नागालैण्ड आन्दोलन** : मिजो लोगों की तह असम के नागा पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने स्वतंत्र नागरा राज्य की मांग की। उन्होंने नागा राज्य की मांग को मनवाने के लिए नागा नेशनल कौंसिल (Naga National Council) की स्थापना की। नागों ने अपनी मांगों को पूरा करवाने के लिए हिंसक तथा अराजकता की कार्यवाही की। जिससे सेना को बुलाना पड़ा। 1962 में 13वें संशोधन द्वारा नागालैण्ड को भारतीय संघ का 16वां राज्य बनाया गया। इसके बाद भी नागालैण्ड में कई विद्रोही नागाओं ने अपना आन्दोलन जारी रखा।
 5. **आजाद कश्मीर की मांग** : जम्मू-कश्मीर में अलगाववाद की जड़े बड़ी गहरी हैं। 1947 में शेख अब्दुल्ला जम्मू-कश्मीर के शासक थे और उन्होंने 1951 से स्वतन्त्र कश्मीर का सपना देखना शुरू कर दिया। इसीलिए अगस्त 1953 में शेख अब्दुल्ला को बन्दी बनाया गया। कश्मीर में अलगाववाद का एक महत्वपूर्ण कारण भारतीय संविधान का अनुच्छेद 370 है जिसने कश्मीर को विशेष दर्जा दे रखा था। जिसे अब समाप्त कर दिया है। 1987-88 से अलगाववादी गतिविधियाँ तेज हो गईं। इन अलगाववादियों को पाकिस्तान का पूर्ण समर्थन प्राप्त है जिस कारण ये कश्मीर में विभिन्न स्थानों पर आतंकवादी गतिविधियाँ कर रहे हैं। उन्हें पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षण, सहायता और प्रोत्साहन मिल रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय विरोधी तत्व विदेशी पर्यटकों का अपहरण करके उनकी हत्या कर देते हैं। उन अलगाववादियों से निपटने के लिए प्रशासन बड़े पैमाने पर कार्यवाही कर रहा है। उनकी मुख्य मांग कश्मीरियों को आत्म निर्णय का अधिकार देना और आजाद कश्मीर की है। इस मांग की पूर्ति के लिए ये अलगाववादी तत्व पाकिस्तान की उकसाहट के कारण खूनी संघर्ष का रास्ता अपनाए हुए हैं।

(2) पृथक राजस्व को प्राप्त करने की मांग

कई बार क्षेत्रीयता आन्दोलन अलग राज्य की स्थापना के लिए किया जाता रहा है। 1956 के राज्यों के पुनर्गठन से प्रत्येक राज्य सन्तुष्ट नहीं था। बम्बई राज्य के लोगों ने पहले अलग राज्य की मांग की, जिसके फलस्वरूप दो न राज्यों महाराष्ट्र व गुजरात की स्थापना हुई। पंजाब में अकाली दल ने पंजाबी सूबा की मांग की। 1966 में अकाली दल की मांग को स्वीकार किया गया और पंजाब दो राज्यों में विभक्त कर दिया गया – पंजाब व हरियाणा।

1. **गोरखालैंड आन्दोलन** : 1985 ई० में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग पर्वतीय क्षेत्र के निवासियों ने सुभाष के नेतृत्व में गोरखालैंड राज्य बनाए जाने की मांग की। गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट ने गोरखा राज्य के लिए व्यापक आन्दोलन चलाए और अन्त में अगस्त, 1988 में एक समझौता हुआ। जिसके अन्तर्गत दार्जिलिंग पर्वतीय गोरखा परिषद् की मांग को स्वीकार कर लिया गया। दार्जिलिंग पर्वतीय गोरखा परिषद् के चुनाव दिसम्बर, 1988 में हुए और गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे को 28 सीटें प्राप्त हुईं।
2. **बोडो आन्दोलन** : 1987 में असम में बसे बोडो कबीले के लोगों ने 'बोडोलैंड' की मांग को लेकर 'आल बोडो स्टूडेंट्स यूनियन' (All Bodo Students Union) के नेतृत्व में आंदोलन शुरू किया। आल बोडो स्टूडेंट्स यूनियन ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी किनारे पर बसे बोडो कबीले के लोगों के लिए अलग राज्य की मांग कर रही है ताकि वे अपनी संस्कृति एवं भाषा की रक्षा कर सकें और अपना सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास कर सकें। 15 अगस्त, 1989 को अखिल बोडो छात्र संघ ने एक हजार घण्टे के असम बन्द का आन्दोलन शुरू किया। इस आन्दोलन में बोडो और गैरबोडो समुदायों में हिंसक घटनाएं हुईं। 28 अगस्त, 1989 को नई दिल्ली में त्रिपक्षीय वार्ता हुई और बोडो आन्दोलनकारी बातचीत के लिए उचित वातावरण बनाने के उद्देश्य से अपना आन्दोलन स्थगित करने तथा हिंसक गतिविधियाँ रोकने पर सहमत हो गए। बोडोलैंड आन्दोलन, 20 फरवरी को आन्दोलन के नेताओं, केन्द्र और राज्य

सरकार के बीच हुए एक समझौते के साथ ही समाप्त हो गया। समझौते के अनुसार असम राज्य के बोडो लोगों की आशाओं के पूरा करने और सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए एक 40 सदस्यीय स्वायत्तशाही परिषद् बनाई गई। इस परिषद् के 35 सदस्य निर्वाचित थे और 5 सदस्यों को राज्यपाल द्वारा मनोनीत किए गए। 19 मई 1993 को बोडोलैंड अन्तरिम परिषद् की स्थापना की गई। अन्तरिम परिषद् का गठन बोडो समझौते के पालन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

3. **झारखण्ड आन्दोलन :** झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और मध्यप्रदेश के 21 जिलों को मिलाकर झारखण्ड राज्य की स्थापना की मांग की रहा है। झारखण्ड मुक्ति मोर्चा ने 4-5 वर्षों में कई बार जोरों से आन्दोलन चलाए। झारखण्ड नेताओं ने 15 सितम्बर, 1992 को झारखण्ड बन्द और 18 से 30 सितम्बर तक बिहार में आर्थिक नाकेबन्दी का आह्वान किया। 15 मार्च 1993 को झारखण्ड बन्द किया गया और 16 मार्च से आर्थिक नाकेबन्दी को 20 अप्रैल को प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने समस्या के निदान हेतु द्विपक्षीय बैठक बुलाने के आश्वासन के बाद स्थगित कर दिया। वार्ता के कई दौर चले पर झारखण्ड समस्या का कोई हल नहीं निकला। 17 मार्च 1994 का अखिल झारखण्ड विद्यार्थी संघ व झारखण्ड पीपुल्स पार्टी के आह्वान प 48 घंटे के बन्द के दौरान कई जगहों पर हिंसक वारदातें भी हुईं। 22 सितम्बर, 1994 को केन्द्र सरकार ने बिहार सरकार व झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के साथ मिलकर किया, जिसके अन्तर्गत झारखण्ड के विकास के लिए एक स्वायत्तशाही विकास परिषद् की स्थापना की जाएगी। इस परिषद् में 100 सदस्य होंगे जिनमें से 90 सदस्य निर्वाचित और मनोनीत होंगे। परन्तु इन व्यवस्थाओं के बावजूद भी झारखण्ड आन्दोलन चलता रहा। अन्ततः केन्द्र सरकार ने झारखण्ड वालों की बात मानते हुए, नवम्बर 2000 में झारखण्ड नाम का एक नया राज्य बना दिया।
4. **उत्तरांचल राज्य की मांग :** उत्तरप्रदेश में उत्तरांचल की मांग जोरो से चली। जनवरी, 1990 में भारतीय जनता पार्टी के महासचिव डॉ० मुरली मनोहर जोशी

के नेतृत्व में एक उत्तरांचल राज्य संघर्ष समिति का प्रतिनिधिमण्डल गुहमन्त्री से मिला और उसने उत्तरप्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों को मिला कर उत्तरांचल राज्य की स्थापना की मांग की। दिसम्बर, 1993 में उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह यादव ने भी उत्तरांचल राज्य की मांग का समर्थन किया। 1994 में उत्तराखंड आन्दोलन तीव्र गति से चला। 2 अक्टूबर, 1994 को जब उत्तराखंड के आन्दोलनकारी बसों में दिल्ली आ रहे थे तब मुजफ्फरपुर नगर में पुलिस ने उन पर हर तरह के अत्याचार किए। मई, 1998 में भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने उत्तरांचल को राज्य बनने की घोषणा की। केन्द्र सरकार ने उत्तरांचल वासियों की मांग को मानते हुए नवम्बर, 2000 में उत्तरांचल नामक नया राज्य बना दिया।

5. **पूर्ण राज्यत्व को प्राप्त करने की मांग :** क्षेत्रीयता की समस्या का तीसरा रूप पूर्ण राज्यत्व की मांग है। संविधान में 14वां संशोधन 1962 में किया गया था, जिसके अनुसार हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, पाण्डिचेरी तथा गोवा में विधानमण्डल की स्थापना की गई। हिमाचल प्रदेश के लोग बड़ी देर से हिमाचल को पूर्ण राज्य बनाने की कर रहे थे, अतः 31 जुलाई 1970 को हिमाचल को पूर्ण राज्य घोषित कर दिया गया। 1970 में दिल्ली की मेट्रोपोलिटन परिषद् (Metropolitan Council) ने दिल्ली को पूर्ण राज्य बनाए जाने की मांग की, परन्तु केन्द्रीय सरकार ने इस मांग का दृष्टिगत रखते हुए संविधान में 69वें संशोधन अधिनियम द्वारा दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र घोषित किया जिसमें एक विधान सभा की व्यवस्था की गई है। नवम्बर, 1993 में इसके चुनाव हुए और मदन लाल खुराना पहले मुख्यमंत्री बने। 1972 में मणिपुरा तथा त्रिपुरा भी पूर्ण राज्य बना दिए गए। दिसम्बर, 1986 में गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा देने के लिए आन्दोलन शुरू हुआ और संसद ने मई 1987 में गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा देने का बिल पास किया।
6. **अन्तर्राज्यीय विवाद :** क्षेत्रीयता की समस्या का एक अन्य रूप राज्यों के बीच पारस्परिक विवाद हैं। इस तरह का पहला विवाद मैसूर और महाराष्ट्र में हुआ

पंजाब और हरियाणा के बीच 1966 से विवाद चला आ रहा है। आज भी चण्डीगढ़ दोनों राज्यों में विवाद का मुख्य कारण बना हुआ है। असम-नागालैंड सीमा विवाद बहुत समय से चल रहा है और नवम्बर, 1987 में इस विवाद ने पुनः उग्र रूप धारण कर लिया और दोनों राज्यों में अनेक खूनी मुठभेड़ हो चुकी हैं। नदियों के पानी के इस्तेमाल के लिए राज्यों में विवाद होते रहते हैं। नर्मदा नदी के पानी पर मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र में काफी समय तक विवाद चलता रहा और इसका हल मार्च, 1975 में हुआ। महाराष्ट्र, मैसूर और आन्ध्रप्रदेश में कृष्णा नदी के पानी के लिए काफी देर तक विवाद चलता रहा। पंजाब और हरियाणा में पानी का बंटवारा विवाद का एक महत्वपूर्ण कारण है। कावेरी जल विवाद कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों में तनाव का मुख्य कारण है। 29 जुलाई, 1991 को केन्द्रीय श्रम मंत्री के० राममूर्ति ने कावेरी जल विवाद के मसले पर मन्त्रिमण्डल से त्याग-पत्र दे दिया। कावेरी जल विवाद का मामला अगस्त 1991 में उच्चतम न्यायालय के पास ले जाया गया। 22 नवम्बर, 1991 में अपने फैसले के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय ने कर्नाटक सरकार का अध्यादेश असंवैधानिक घोषित कर दिया। जुलाई 1998 में अन्ना डी०एम०के० की नेता सुश्री जयजलिता ने केन्द्र सरकार से आग्रह किया कि कावेरी जल विवाद को शीघ्रता से निपटाया जाए।

7. **राज्य के लोगों के हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन :** कई बार क्षेत्रीय आन्दोलन राज्य के लोगों के हितों की रक्षा के लिए किए जाते हैं। असम आन्दोलन इस तरह का ही था। असम आन्दोलन 1979 से लेकर 1985 तक चला। यह आन्दोलन असम में विदेशियों की समस्या को लेकर चलाया गया, क्योंकि असमिया मूल के लोगों में यह आशंका घर कर चुकी थी कि वे अल्पसंख्यक बन जाएंगे क्योंकि बंगलादेश से आकर लाखों लोग असम में बसते जा रहे थे। इस आन्दोलन को छात्रों ने आल असम स्टूडेंट्स यूनियन नामक संगठन के तहत चलाया। आन्दोलनकारियों ने मांग की कि चुनाव करवाने से पहले विदेशियों की समस्या को हल किया जाए और विदेशियों के नाम मतदाता सूची

से निकाले जाये। केन्द्र सरकार ने आन्दोलनकारियों के साथ कई बार बातचीत की, पर विवाद को लटकाए रखा। फरवरी, 1993 में असम में चुनाव करवाने का प्रयास किया गया जिसमें बहुत बड़ी हिंसक वारदातें हुईं। दिसम्बर, 1984 के लोकसभा चुनाव असम में नहीं हुए। राजीव गांधी ने सत्ता में आने पर असम समस्या को हल करने के लिए प्रयास किए और अन्त में 15 अगस्त, 1985 को असम समझौता हुआ। दिसम्बर, 1985 में असम विधानसभा के चुनाव हुए। चुनाव लड़ने के लिए छात्रों और अन्य आन्दोलनकारियों ने असम गण परिषद् की स्थापना की। असम गण परिषद् को चुनाव में बहुमत प्राप्त हुआ और प्रफुल्ल कुमार महंत मुख्यमंत्री बने। असम आन्दोलन इन्हीं के नेतृत्व में चलाया गया था। असम गण परिषद् की सरकार समझौते को लागू करने के लिए वचनबद्ध रही। इस समझौते की मुख्य बातें हैं। “1966 से 1971 के बीच आए विदेशियों को पहचानना और उनके नाम मतदाता सूची से 10 वर्ष के लिए हटवाना तथा 1971 के बाद विदेशियों को बाहर निकालना।”

क्षेत्रीयतावाद को रोकने के उपाय

राष्ट्रीय जीवन के लिए क्षेत्रीयता कोई अच्छी चीज नहीं है। इस पर रोक लगाना ही उचित है इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उपायों को सुझाया जा सकता है —

1. केन्द्रीय सरकार की नीति कुछ इस प्रकार की होनी चाहिए कि सभी उपसांस्कृतिक क्षेत्रों (Sub-Cultural Regions) का सन्तुलित आर्थिक विकास सम्भव हो जिससे कि विभिन्न क्षेत्रों के बीच तनाव कम से कम हो।
2. सभी क्षेत्रों के लोगों को समान आर्थिक सुविधाएँ प्रदान की जाए जिससे कि आवश्यक प्रतिस्पर्द्धा व ईर्ष्या की भावना न पनप सके।
3. भाषा सम्बन्धी झगड़ों का हल शीघ्र ही ढूँढ लिया जाए। इस सम्बन्ध में सबसे उचित हल यह है कि सभी क्षेत्रीय भाषाओं को समान मान्यता: प्रदान की जाए।
4. हिन्दी भाषा को किसी भी क्षेत्रीय समूह पर जबरदस्ती लादा न जाए। अपितु इस भाषा का प्रचार व विस्तार इस ढंग से किया जाए कि विभिन्न क्षेत्रीय समूह स्वतः ही इसे सम्पर्क भाषा (Link Language) के रूप में स्वीकार कर ले।

5. प्रचार के विभिन्न साधनों के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों के सांस्कृतिक लक्षणों के विषय में लोगों के सामान्य ज्ञान को बढ़ाया जाए जिससे कि एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र के प्रति अधिक सहनशीलता की भावना को पनपा सकें।
6. केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में सभी क्षेत्रों के नेताओं का सन्तुलित प्रतिनिधित्व हो जिससे कि क्षेत्रीय पक्षपातपूर्ण नीतियों को खण्डन हो सके और केन्द्रीय सरकार के इरादों पर किसी को भी सन्देह न रहे।
7. जहाँ तक सम्भव व व्यावहारिक हो उप-सांस्कृतिक क्षेत्रों की उचित आकांक्षाओं की पूर्ति की जाए यदि उनका कोई बुरा प्रभाव राष्ट्रीय जीवन व संगठन पर न पड़ता हो।
8. भारतीय संघ के राज्यों की सकीर्ण मानसिकता को दूर करने के लिए केन्द्र एवं राज्य सम्बन्धों को इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि उनमें असन्तोष न पैदा हो, वे मजबूत केन्द्र की आवश्यकता को समझे और केन्द्र को भी उनके सहयोग की अनिवार्यता की अनुभूति हो। इन दिनों केन्द्र राज्य सम्बन्ध भी चर्चा का विषय बना हुआ है। इस सम्बन्ध में सरकारी आयोग का भी गठन किया गया था जिसने सन् 1987 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। इस आयोग की सिफारिशों के माध्यम से केन्द्र राज्य सम्बन्धों का पुनर्निर्धारण एवं अन्य सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में एक सन्तुलित नीति निर्धारित करने की ओर प्रयास भी किए गए।

क्षेत्रीयवाद : आलोचनात्मक मूल्यांकन (Regionalism : Critical Appraisal)

स्वतंत्रता के बाद भारतीय जनमानस में नवीन आकांक्षाएं उठने लगी। राज्य के नीति निर्देशक तत्व, पंचवर्षीय योजनाएं आदि कार्यक्रम आदर्श थे, लेकिन व्यवहार में गरीबी और आर्थिक विषमता ही बढ़ती गयी। इस स्थिति का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय एकता तथा हितों की अपेक्षा क्षेत्रीयतावाद को बढ़ावा मिलने लगा। असन्तोष के इस वातावरण में विभिन्न वर्गों द्वारा शक्ति के लिए संघर्ष की शुरुआत हुई। ऐसे नवीन राजनीतिक दलों का उदय होने लगा, जो कि क्षेत्रीय हितों के लेकर शक्ति अर्जित करने लगे।

क्षेत्रीयता के आधार पर राज्य केन्द्र से सौदेबाजी करने लगे और अपनी जड़ों को मजबूत करने के लिए राजनीतिक दल प्रादेशिकता की भावना का प्रचार करने लगे प्रादेशिकता के आधार पर चुनावों में उम्मीदवार का मनोनयन किया जाने लगा। सरकार के गठन में क्षेत्रीयता को मानदण्ड बनाया जाने लगा।

क्षेत्रीयतावाद का भारतीय राजनीति की शैली पर काफी प्रभाव पड़ा तथा आन्दोलनात्मक राजनीति को बढ़ावा मिला। क्षेत्रीय आन्दोलनों को चलाने के लिए आर्थिक विषमता, धर्म, जाति और भाषा का सहारा लिया गया। यथार्थ में, क्षेत्रीयता की समस्या आज भारत की राष्ट्रीयता एकता के मार्ग में कण्टक बन गयी है। संघर्षात्मक प्रादेशिकता की भावना को समाप्त कर उदार सहयोगी प्रादेशिकता की भावना के प्रसार की आवश्यकता हैं।

डॉ० रशीदउदीन खां ने क्षेत्रीयतावाद के सकारात्मक पक्ष की चर्चा करते हुए लिखा है कि यह धारणा गलत साबित हुई कि क्षेत्रीयतावाद के कारण भारतीय संघ छिन्न-भिन्न हो जाएगा अपितु यह मत अधिक सही साबित हुआ कि क्षेत्रीयतावाद या उप-राष्ट्रवाद में सह-अस्तित्व सम्भव है। वस्तुतः भारत में क्षेत्रवाद सामान्यतः पृथकतावादी नहीं है। क्षेत्रवाद का लक्ष्य केवल क्षेत्र अथवा समुदाय विशेष के लिए अधिक सुविधाएं प्राप्त करना है। इसका अनिवार्य अर्थ यह नहीं है कि वह अन्य क्षेत्रों के विकास अथवा राष्ट्र की अखण्डता के विरुद्ध है, बल्कि एक सीमा तक इस प्रकार के क्षेत्रवाद ने भारत के विकास को गति प्रदान की है। अनेक ऐसी योजनाएं और कार्यक्रम हैं जो शायद धीमे पड़े हुए थे, क्षेत्रीय दबावों के कारण तीव्र हुए हैं। साथ ही क्षेत्रवादी नेतृत्व ने सत्ता में रहकर अपने दावों को उचित साबित करने के लिए अपने राज्यों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए हैं। इन राज्यों के विकास से सारे देश को भी लाभ होता है। तमिलनाडु, पंजाब और हरियाणा में विकास की गति इसका प्रमाण हैं। निस्संदेह खालिस्तान समय-समय पर कश्मीर तथा उत्तरी-पूर्वी सीमान्त राज्यों में कुछ आन्दोलन पृथकतावादी भी हैं, परन्तु इनका समर्थन और प्रभाव अधिक नहीं हैं।

कुल मिलकर यह कहा जा सकता है कि भारत जैसे विशाल, विविधतापूर्ण और लोकतान्त्रिक देश में क्षेत्रवाद और उपक्षेत्रवाद स्वाभाविक अवधारणाएं हैं। पूंजीवाद व्यवस्था पर आधारित विकास की प्रक्रिया इसके विकास को संगठित और सक्रिय रूप प्रदान करती है। यदि स्रोतों के बंटवारे विकास की गति और विभिन्न समुदायों की आकांक्षाओं को कुछ सीमा तक नियन्त्रित किया जाए तो क्षेत्रवाद हानिकारक न होकर एक सामान्य संघीय प्रक्रिया तक ही सीमित रहता है और विभिन्न अल्पसंख्यकों और क्षेत्रीय वर्गों को राजनीति में भागीदारी को संतुष्टि दिलवाता है।

4.6.4 निष्कर्ष

क्षेत्रीयवाद का भारतीय राजनीति की शैली पर काफी प्रभाव पड़ा तथा आन्दोलनात्मक राजनीति को बढ़ावा मिला। क्षेत्रीय आन्दोलनों को चलाने के लिए आर्थिक विषमता, धर्म, जाति और भाषा का सहारा लिया गया। यथार्थमें, क्षेत्रीयता की समस्या आज भारत की राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बड़ी बाधा है। अतः हमें संघर्षात्मक प्रादेशिकता की भावना को समाप्त कर उदार सहयोगी प्रादेशिकता की भावना के प्रसार की आवश्यकता है।

4.6.5 मुख्य शब्दावली

- अन्तर्राज्यीय विवाद : किन्हीं दो या दो से अधिक राज्यों के बीच किसी विषय की वजह से संघर्ष या तनाव।
- खालिस्तान : पंजाब से अलग एक अन्य राज्य खालिस्तान की मांग की गई। पृथकतावादियों के द्वारा।
- भूमि-पुत्र की धारणा : किसी राज्य अथवा क्षेत्र के निवासियों द्वारा उस राज्य में बसने और रोजगार प्राप्त करने आदि के संबंध में विशेष संरक्षण की मांग।

4.6.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में क्षेत्रवाद के उत्थान के मुख्य कारणों की व्याख्या कीजिए। यह भारतीय राजनीति को कैसे प्रभावित करता है ?

2. क्षेत्रीयवाद से आप क्या समझते हैं ? भारत में क्षेत्रीयवाद के विकास के लिए कौन से कारण उत्तरदायी हैं ?
3. क्षेत्रीयवाद से आपका क्या अभिप्राय है ? भारत में इसके विभिन्न रूपों की व्याख्या करें।
4. भारत में क्षेत्रीयवाद की समस्या पर एक निबन्ध लिखिए।
5. भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में क्षेत्रवाद की भूमिका की आलोचनात्मक समीक्षा करें।
6. क्षेत्रवाद की समस्या के समाधान के लिए कोई दो सुझाव दें।
7. आर्थिक तथ्य भारत में क्षेत्रवाद को कैसे उभारते हैं ?

4.6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, "दा गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया", पैनेटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, "इण्डियन कान्स्टीट्यूशन", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, "कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, "दा ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया", प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, "डायनामिक्स ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स", स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, "स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग", एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976

- सी०पी० भाम्भरी, "दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस", सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, "दा फाँउडेशन ऑफ इण्डियन फ़ैडरलिज्म", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश, "पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेन्डन्स", II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियॉड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्डोरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, "डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस," एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, "स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया", वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, "डैमोक्रेसी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, "दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेसी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, "पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, "कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977

- अब्बास, "इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, "तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.7 राष्ट्र-निर्माण की समस्या एवं राष्ट्रीय एकीकरण (Problem of Nation-Building or National Integration)

4.7.1 परिचय

भारत के सामने आज कई गम्भीर समस्याएं हैं जोकि किसी बाहरी खतरे से कम नहीं हैं। 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा था, “आज आवश्यकता इस बात की है कि भारत को यह सब कुछ करना चाहिए जो एक राष्ट्र युद्ध के समय करता है, अपने सभी स्रोतों का प्रयोग किया जाए और सभी मतभेदों को भुलाकर दुश्मन को हराने का प्रयास किया जाए। देश में अशान्ति, आर्थिक स्थिति में गिरावट, कीमतों में वृद्धि, सत्तारूढ़ कांग्रेस का ‘गरीबी हटाने’ में असफल होना, बिहार, गुजरात तथा अन्य क्षेत्रों में गड़बड़ी का होना आदि वाद-विवाद के महत्वपूर्ण विषय बने हुए हैं।

4.7.2 उद्देश्य

- राष्ट्र-निर्माण के नियामक तत्त्व क्या होते हैं
- भारत में राष्ट्र-निर्माण में क्या-क्या बाधाएं हैं
- इन बाधाओं को कैसे दूर किया जा सकता है
- राष्ट्र-निर्माण क्यों आवश्यक है

4.7.3 राष्ट्र-निर्माण व राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या

15 अगस्त 1980 को लालकिले से भाषण देते हुए श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद और सम्प्रदायवाद के खतरों की चेतावनी दी और इस बात पर जोर दिया कि इनको समाप्त करके ही राष्ट्र आगे बढ़ सकता है। चालीसवें स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्र के नाम अपने सन्देश में राष्ट्रपति ने कहा कि साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद और संकीर्णता की विषैली ताकतें हम पर हावी होने की कोशिश कर रही हैं। 15 अगस्त 1990 को स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर

लालकिले से भाषण देते हुए प्रधानमंत्री वी०पी० सिंह ने भी साम्प्रदायिकता, जातिवाद क्षेत्रवाद और आतंकवाद की समस्याओं की ओर भारतीयों का ध्यान दिलाया। ये समस्याएं राष्ट्र-निर्माण में रोड़ा अटकाती हैं। ये समस्याएं मुख्यतः निम्नलिखित हैं :

1. **राजनीति में धन-शक्ति (Money Power in Politics)** : हमारे राजनीतिक विकास को सबसे महत्वपूर्ण कीड़ा यह लग गया है कि चुनावों में और अन्य राजनीतिक कार्यों में धन का प्रयोग बहुत अधिक किया जाने लगा है। निर्वाचन-खर्च से सम्बन्धित कानून को मानने की अपेक्षा उल्लंघन करके उसका अधिक पालन किया जाता है। यद्यपि चुनाव के दिन मतदाताओं को परिवहन की सुविधाएं प्रदान करना, भ्रष्टाचार हैं, फिर भी सभी राजनीतिक दल और आजाद उम्मीदवार मतदाताओं को यह सुविधा प्रदान करके भ्रष्टाचार को फैलाते हैं।
2. **साम्प्रदायिकता (Communalism)** : साम्प्रदायिक भावनाएं राष्ट्र-निर्माण के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा है। कई बार साम्प्रदायिक दंगे फसाद उग्र रूप धारण कर लेते हैं। जैसा कि 1980 में मुरादाबाद, अलीगढ़, मेरठ, दिल्ली, कश्मीर इत्यादि स्थानों में हुआ। जुलाई 1986 में आंतरिक सुरक्षा राज्यमंत्री पी० चिदम्बरम ने लोकसभा में स्वीकार किया कि पिछले पांच वर्षों के दौरान साम्प्रदायिक स्थिति और बिगाड़ी हैं। 6 दिसम्बर 1992 को अयोध्या में विवादास्पद ढांचा गिराए जाने पर एक बार फिर साम्प्रदायिक दंगे फैल गए और सारा देश तनावग्रस्त हो गया।
3. **बहुमत काल्पनिक होना (Majority is merely a Myth)** : यह आम कहा जाता है कि बहुमत दल सभी निर्णय साधारण बहुमत से लेते हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि बहुमत दल के नेता सभी निर्णय पहले से ही ले लेते हैं और अन्य सदस्यों पर इन निर्णयों को थोप दिया जाता है। भारत में संसदीय शासन बहुमत का शासन न होकर अल्पमतों का शासन है।
4. **केन्द्र-राज्य तनाव (Centre-State Conflict)** : भारतीय संविधान के अन्तर्गत संघात्मक शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई है। नेहरू और शास्त्री के काल में केन्द्र और राज्यों में अच्छे सम्बन्ध बने रहे क्योंकि समस्त भारत में कांग्रेस पार्टी

का ही शासन था। 1967 के आम-चुनावों के बाद कई राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हो गई जिससे केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों की समस्या उत्पन्न हो गई। गैर-कांग्रेसी सरकारों ने केन्द्र सरकार के विरुद्ध शिकायतें करनी शुरू कर दी और अधिक अधिकारों की मांग करनी आवश्यक कर दी। 1967 में केरल के मुख्यमंत्री नम्बूदरीपाद ने केन्द्र से यह शिकायत थी कि उन्हें यदि पर्याप्त मात्रा में खाद्य वस्तुएं न मिली तो वह चीन से इसकी व्यवस्था करने के लिए मजबूर हो जाएंगे। मार्च 1967 में पश्चिमी बंगाल के संयुक्त मोर्चे की सरकार और केन्द्र के सम्बन्धों में, राज्यपाल धर्मवीर के विधानमण्डल में दिए गए भाषण के कारण तनावपूर्ण स्थिति पैदा हो गई। 28 जून 1969 को पंजाब के मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह ने केन्द्र की आलोचना की। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री सी०बी० गुप्ता ने केन्द्र के विरुद्ध यह शिकायत थी कि केन्द्र उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग नहीं दे रहा है।

1971 के चुनावों के बाद केन्द्र-राज्यों के सम्बन्धों की स्थिति में परिवर्तन आया और केन्द्र-राज्यों के सम्बन्धों की स्थिति में परिवर्तन आया और केन्द्र तथा अधिकांश राज्यों में कांग्रेस की सरकारें स्थापित हुईं। दिसम्बर 1973 में ये मांग की गई कि केन्द्र को अपने पास केवल चार विभाग—सुरक्षा, विदेश मुद्रा एवं संचार रखने चाहिए और शेष सभी विषय राज्यों के अधीन होने चाहिए। मार्च 1977 में केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार बनी। जनता सरकार ने अप्रैल 1977 में 9 राज्यों की विधानसभाओं को भंग करके चुनाव करवाए। फरवरी 1978 में पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने राज्यों को स्वायत्तता देने के प्रश्न पर राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने की मांग की लेकिन तत्कालीन प्रधानमंत्री देसाई ने इस मांग को अस्वीकार कर दिया। 1980 में कांग्रेस (इ) की सरकार बनी। श्रीमती गांधी के पुनः सत्ता में आने पर केन्द्र-राज्यों के सम्बन्धों में थोड़ा सुधार हुआ। पश्चिमी बंगाल की मार्क्सवादी पार्टी, तमिलनाडु की डी०एम०के० पार्टी तथा पंजाब के अकाली दल पिछले कुछ वर्षों से राज्यों को अधिक अधिकार देने की मांग करते आ रहे हैं और आज भी कुरेद रहे हैं। नब्बे के दशक से 2014

तक केन्द्र में किसी भी एक दल के स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पा रहा था। ऐसी स्थिति में क्षेत्रीय दलों के सहयोग से सरकार का निर्माण किया गया। इससे क्षेत्रीय दलों ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए राज्यों के लिए अधिक से अधिक स्वायत्तता की मांग करनी शुरू कर दी। इसके परिणामस्वरूप केन्द्र पर निरन्तर दबाव बढ़ा।

5. **दल-बदल (Defection) :** भारत में राष्ट्र-निर्माण तथा राजनीतिक विकास में एक महत्वपूर्ण बाधा दल-बदल हैं। इसने भारतीय राजनीति को इतना गन्दा कर दिया है कि पढ़े-लिखे व्यक्ति तो दूर, साधारण जनता भी प्रजातंत्र के भविष्य के बारे में शंकित हो उठी है क्योंकि दल ने राजनीति और शासन में अस्थिरता ला दी हैं। 1985 में संविधान में 52वां संशोधन किया गया ताकि दल-बदल की बुराई को समाप्त किया जा सके। इसके कारण दल-बदल करने वाले सदस्य की संसद या राज्य विधानमण्डल की सदस्यता समाप्त हो जाती है। परन्तु दल-बदल की बुराई पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। खुदरा दल-बदल को रोकने की अभी भी आवश्यकता है।
6. **एक दल का प्रभुत्व होना (Single Party Dominance) :** यह आम कहा जाता है कि एक दल का प्रभुत्व और विरोधी दलों का बंटे होना स्वस्थ प्रजातंत्र के लिए हानिकारक है। 1950 से लेकर 1977 तक केन्द्र में कांग्रेस की सरकार चली। 1967 के आम चुनाव के बाद कई राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हो गई थी परन्तु वे दल-बदल तथा अन्य कारणों से अधिक समय तक न चल सकी। मार्च 1977 में पहली बार केन्द्र में गैर-कांग्रेसी अर्थात् जनता पार्टी की सरकार बनी जोकि अधिक समय तक न चल सकी। जनवरी 1980 में कांग्रेस (इ) की श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में सरकार बनी। 1980 से लेकर 1989 तक कांग्रेस का प्रभुत्व रहा। इस प्रकार हमारे देश में अधिकांश समय में कांग्रेस का प्रभुत्व रहा है।
7. **बेरोजगारी की समस्या (Problem of Unemployment) :** राष्ट्र-निर्माण के रास्ते में एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या बेरोजगारी की समस्या है। बेरोजगारी की

स्थिति में व्यक्ति काम तो करना चाहता है, परन्तु उसे काम मिलता नहीं। आजकल भारत में अनपढ़ व्यक्तियों का तो कहना ही क्या, पढ़े-लिखे व्यक्तियों को भी रोजगार नहीं मिलता। जुलाई 1982 तक देश के रोजगार कार्यालयों के चालू रजिस्ट्रों पर मैट्रिक से अधिक शिक्षा प्राप्त और अन्य नौकरी चाहने वालों की कुल संख्या एक करोड़ 76 लाख 60 हजार थी परन्तु 1996 में पढ़े लिखे बेरोजगारों की संख्या 3 करोड़ से अधिक थी। बेरोजगारी कई प्रकार की आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याएं उत्पन्न करती है। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी०पी० गिरि ने कहा था कि बेरोजगारी ने हमारे नौजवानों को नक्सलवादी बना दिया है। बेकार व्यक्ति लोकतंत्र के प्रति उदासीन रहता है। वह चुनाव में दिलचस्पी नहीं लेता और वोट को भी बेच डालता है। बेरोजगारी से बेईमानी, चोरी, ठगी तथा भ्रष्टाचार में बढ़ोतरी हुई है। बेकार व्यक्ति नौकरी पाने के लिए अनैतिक कार्यों को भी करने के लिए तैयार हो जाता है। राष्ट्र के निर्माण के लिए बेकारी को जल्दी समाप्त करना अति आवश्यक है।

8. **जनसंख्या में वृद्धि (Over Population)** : राष्ट्र निर्माण एवं आर्थिक विकास के रास्ते में एक अन्य रुकावट बढ़ती हुई जनसंख्या भी है। भारत में जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि कृषि और उद्योगों में पर्याप्त मात्रा में उन्नति होने के बावजूद भारत की अधिकांश जनता गरीब है। 1966 में भारत की जनसंख्या 50 करोड़ थी जो 1971 में 55 करोड़ हो गई और आजकल 130 करोड़ से अधिक है। यदि जनसंख्या की वृद्धि इसी प्रकार होती रही तो भारत आर्थिक दृष्टि से कभी विकास नहीं कर पाएगा।
9. **संगठित विरोधी दल का अभाव पाया जाना (Lack of Organised Opposition)** : निर्माण और राजनीतिक विकास के लिए संगठित विरोधी दल का होना अनिवार्य है। परन्तु भारत में इसका अभाव रहा है। संसदीय लोकतंत्र की सफलता के लिए संगठित विरोधी दल अनिवार्य है। विरोधी दल सत्तारूढ़ दल को अनुचित कार्य करने से रोकता है और आवश्यकता पड़ने पर सरकार को सम्भालता है। 24 जुलाई 1982 को राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने राष्ट्र के नाम

अपने विदाई सन्देश में विपक्ष की मौजूदा स्थिति पर असंतोष व्यक्त करते हुए सभी राजनीतिज्ञों का आह्वान किया कि वे स्थिरता और लोकतंत्र की मजबूती के लिए जिम्मेदार जागरूक और प्रभावी विपक्ष का निर्माण करें। उन्होंने कहा कि मजबूत विपक्ष न होने पर सत्तारूढ़ दल में मतभेद और विभाजन होने की स्थिति में देश की राजनीतिक प्रणाली में अस्थिरता आ जाएगी। सितम्बर-अक्टूबर 1999 के 13वीं लोकसभा के चुनावों के बाद भारतीय कांग्रेस को विरोधी दल के रूप में मान्यता दी गई। 2004 और 2009 के चुनावों के बाद भाजपा को विरोधी दल की भूमिका मिली। वर्तमान में कांग्रेस फिर से विपक्ष की भूमिका में है।

10. **गरीबी की समस्या (Problem of Poverty) :** राष्ट्र के निर्माण में एक अन्य बाधा गरीबी है स्वतंत्रता के 70 वर्षों के बाद भी बड़ी जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रही है। गरीबी कई बुराईयों की जड़ है। गरीब नागरिक को पेट भर भोजन न मिल सकने के कारण उसका शारीरिक और मानसिक विकास नहीं हो सकता। वह सदा अपना पेट भरने की चिन्ता में लगा रहेगा और उसके पास समाज और देश की समस्याओं पर विचार करने का न समय होता है और न ही इच्छा। गरीब नागरिक अपनी वोट को बेचने के लिए तैयार हो जाता है। प्रत्येक राजनीतिक दल भारतीयों की गरीबी का राजनीतिक लाभ उठाना चाहता है। चुनाव के समय सभी राजनीतिक दल गरीबी हटाने का वायदा करते हैं ताकि गरीबों की वोट प्राप्त की जा सके लेकिन बाद में सब भूल जाते हैं। गरीबी ने हिंसात्मक गतिविधियों को जन्म दिया है। अतः यदि हम राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं तो गरीबों को दूर करना होगा।

राष्ट्रीय एकीकरण (National Integration)

किसी भी राज्य की राष्ट्रीय अखण्डता तथा एकता उसके लिए सर्वोपरि होती है। कोई भी राज्य यह सहन नहीं कर सकता कि उसकी अखण्डता का विनाश हो। राष्ट्रीय एकीकरण राज्य की प्रथम आवश्यकता है। राज्य के विकास के लिए यह आवश्यक है कि राज्य के अन्दर रहने वाले विभिन्न लोगों में एकता की भावना हो और

यही भावना राष्ट्रीय एकीकरण का सार है। राष्ट्रीय एकीकरण की भावना द्वारा विभिन्न धर्मों, जातियों व भाषाओं के लोगों में परस्पर मेलजोल बढ़ा कर एकता का विकास किया जाना है।

प्रो० माइनर वीनर (Myron Weiner) के अनुसार : राष्ट्रीय एकीकरण का अभिप्रायः उन विघटनकारी आन्दोलनों पर निगरानी रखना है जो राष्ट्र को खण्डित कर सकते हैं और सम्पूर्ण समाज में ऐसी अभिवृत्तियों का होना है जो संकीर्ण हितों की उपेक्षा राष्ट्रीय और सार्वजनिक हितों को प्राथमिकता देती है।

एच०ए० गन्नी (H.A. Gani) के अनुसार, राष्ट्रीय एकीकरण एक ऐसी, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और शैक्षणिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोगों के दिलों में एकता, दृढ़ता, सम्बद्धता की भावना विकसित होती है और उनमें सामान्य नागरिकता की भावना अथवा राष्ट्र के प्रति वफादारी की भावना का विकास होता है।

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार, "राष्ट्रीय एकीकरण एक घर नहीं है जो चूने और ईंटों से बनाया जा सकता है। यह एक औद्योगिक योजना भी नहीं है जिस पर विशेषज्ञों द्वारा विचार किया जा सकता है और रचनात्मक रूप दिया जा सकता है। इसके विपरीत एकीकरण एक ऐसा विचार है जिसका विकास लोगों के दिलों में होता है। यह एक चेतना है जिसने जनसाधारण को जागृत करना है।

अतः राष्ट्रीय एकीकरण उस भावनात्मक तथा विचारात्मक एकता का नाम है जो सभी भारतवासियों को प्रान्त, भाषा, जाति, मजहब, क्षेत्र आदि की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर उन्हें एक सूत्र से बांधती है और उन्हें इस राष्ट्र की सनातन परम्परा के अनुसार विविधता में एकता का साक्षात्कार करती है।

भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के आयाम

(Dimension or Aspects of National Integration in India)

राष्ट्रीय एकीकरण एक व्यापक अवधारणा है जिसके कई आयाम (पक्ष) हैं। इसका विवरण निम्नलिखित है –

1. **राजनीतिक आयाम (Political Dimension)** : राष्ट्रीय एकीकरण का राजनीतिक आयाम देश के क्षेत्रीय संगठन से सम्बन्धित है। इसके लिए राज्य—

निर्माण (State building) का होना अनिवार्य है। सन् 1956 में भारतीय संसद द्वारा राज्य पुनर्गठन अधिनियम (State Reorganisation Act, 1956) पास किया गया जिसके अनुसार भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। उसके बाद भी भाषा के आधार पर कई नए राज्यों का गठन किया गया जिसके परिणामस्वरूप राज्यों की संख्या 29 हो गई है। कई विद्वानों द्वारा भाषा के आधार पर राज्यों के इस गठन को दोषपूर्ण माना जाता है क्योंकि विशुद्ध भाषा के आधार पर राज्यों का गठन व्यावहारिक रूप में असम्भव है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक राज्य में कई भाषाएं बोलने वाले लोग रहते हैं। यही कारण है कि आज भी इस आधार पर भारत के कई भागों पर नए राज्यों के गठन की मांग जोर पकड़ रही है। राष्ट्रीय एकीकरण को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि देश के क्षेत्रीय संगठन का कार्य उचित आधारों पर एक बार ही कर दिया जाए। ऐसी मांगे राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा बनती है।

2. **सामाजिक आयाम (Social Dimension) :** राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सामाजिक एकता तथा सामाजिक एकीकरण का होना आवश्यक है। यद्यपि भारतीय संविधान द्वारा छुआछूत को समाप्त कर दिया है, फिर भी समाज में जाति-पाति की इस समस्या का पूर्ण रूप से अन्त नहीं हुआ है। आज भी अनुसूचित जातियों के लोगों के साथ बहुत ही अपमानजनक व्यवहार किया जाता है। भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, राजस्थान आदि राज्यों में जातिवाद आज भी बड़ी मात्रा में मौजूद है। इसके अतिरिक्त भाषा तथा धर्म के आधार पर भारतीय लोगों में भेदभाव बना हुआ है। जब तक इन सीमाओं को नष्ट नहीं कर दिया जाता भारत में राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या बनी रहेगी।
3. **आर्थिक आयाम (Economic Dimension) :** भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग निर्धनता तथा मुखमरी का शिकार है, जबकि कई लोग विलासिता का जीवन व्यतीत करते हैं। इसके अतिरिक्त देश के कुछ भाग अन्य भागों की अपेक्षा बहुत ही अविकसित तथा पिछड़े हुए हैं। भारत में विभिन्न क्षेत्रों

- का असन्तुलित आर्थिक विकास भी राष्ट्रीय एकीकरण के लिए बहुत बड़ी बाधा है।
4. **सांस्कृतिक आयाम (Cultural Dimension)** : सभी लोगों को अपनी संस्कृति से घनिष्ठ लगाव होता है और यह उन्हें राष्ट्रीय मुख्य धारा (National Main Stream) से दूर रखने का एक कारण बनता है। लोग अपनी संस्कृति की अलग पहचान बनाए रखना चाहते हैं और इसके कारण कई बार उग्रवादी और आतंकवादी आन्दोलन भी किए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, सन् 1980 के दशक में पंजाब में उग्रवाद के फैलने का एक मुख्य कारण सिक्खों की अपनी अलग पहचान (Separate Identity) को बनाए रखना था। यदि देश में खण्डित संस्कृति मौजूद है तो वह राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा बन सकती है।
 5. **मनोवैज्ञानिक आयाम (Psychological Dimension)** : डॉ० राधाकृष्णन ने एक बार कहा था, "राष्ट्रीय एकीकरण कोई मकान नहीं है जिसे ईंटों और गारे से बनाया जा सकता है। यह कोई औद्योगिक योजना भी नहीं है जिसे विशेषज्ञों द्वारा विचार और लागू किया जा सकता है। इसके विपरीत एकीकरण एक विचार है जो अवश्य ही लोगों के मन में समा जाना चाहिए। यह एक चेतना है जिसे बड़े पैमाने पर लोगों को अवश्य जागृत करना है।" इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रीय एकीकरण एक विचार है जिसे व्यवहारिक रूप तभी दिया जा सकता है यदि लोगों ने अपने मन में इस विचार को ग्रहण कर लिया हो। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों में इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक भावना पैदा किए बिना राष्ट्रीय एकीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना बहुत कठिन है।
 6. **सामान्य उद्देश्य आयाम (Common Purpose Dimension)** : माईनर वीनर ने लिखा है कि किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोगों का इक्ठठा होना राष्ट्रीय एकीकरण का आधार बनता है। परन्तु लोगों में इतनी योग्यता तथा क्षमता होनी चाहिए कि वे ऐसे उद्देश्य के बारे में जो उनके लिए आवश्यक हो, जन भावनाओं को प्रेरित कर सकें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रीय एकीकरण के अनेक आयाम (पक्ष) हैं और इसके प्रत्येक पक्ष का उचित हल ही इसकी प्राप्ति को सम्भव बना सकता है।

राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में आने वाली बाधाएं

(Hindrances in the Way of National Intergration)

भारत के राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या अथवा उसके मार्ग में उपस्थित बाधक तत्वों का विचार करते समय अभी तक अपने देश के बुद्धिजीवियों, राजनीतिक दलों और उनके नेताओं ने पश्चिम की भौतिकवादी जीवन प्रणाली द्वारा विकसित किए गए पैमानों के आधार पर विचार किया है तथा उनके द्वारा बताए गए उपायों का सहारा लिया गया है लेकिन उससे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या हल होने के स्थान पर और भी अधिक जटिल होती चली गई है। उदाहरण के लिए सन् 1976 में पारित 42वें संविधान संशोधन की प्रस्तावना में पथ-निरपेक्षता (Secularism) शब्द शामिल करते समय यह आशा की गई कि इससे साम्प्रदायिकता पर पूरी तरह नियंत्रण पाने में सफलता मिल सकेगी। लेकिन सन् 1976 में आज तक यह घटना चक्र यही बता रहा है कि साम्प्रदायिकता का राक्षस और अधिक सशक्त हो गया है। अतः हमें राष्ट्रीय एकीकरण का हल भारतीय संदर्भ में खोजना पड़ेगा क्योंकि रोग का निदान करते समय रोगों की प्रकृति को भी समझना अत्यन्त आवश्यक होता है। इस दृष्टि से नीचे दिए गए कारण बहुत अधिक विचारणी हैं –

- **जातिवाद (Casteism) :** जातिवाद की समस्या ने राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा पहुँचाई है। श्री जयप्रकाश नारायण ने एक बार कहा था। “भारत में जाति सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक दल है।” जातिय संगठनों ने भारत की राजनीति में वही हिस्सा लिया है जो पश्चिमी देशों में विभिन्न हितों व वर्गों ने लिया है। चुनाव के समय उम्मीदवारों का चयन जाति के आधार पर किया जाता है और चुनाव प्रचार में जाति के नाम पर वोट मांगी जाती हैं। प्रशासन में भी जातियता का समावेश हो गया है।

- **भाषायी उन्माद (Linguistic Fanaticism) :** पश्चिमी विचारधारा पर आधारित इस घातक मानसिक सोच ने राजनीतिक दलों के नेताओं को इतना अधिक भ्रमित कर रखा है कि वे भारत की सभी भाषाओं में मौजूद भावनात्मक और सांस्कृतिक एकता के सूत्र को पहचानकर विभिन्न भाषायी लोगों को लड़ाते रहते हैं। इसी के फलस्वरूप राष्ट्रियता की भावना के लिए अत्यन्त घातक अंग्रेजी का बोलबाला आज भी देश में बना हुआ है और भारतीय भाषाएं अपना उचित स्थान प्राप्त नहीं कर सकी हैं।

भारत एक बहुभाषी राज्य सदैव से ही रहा है। 1927 में जो भाषा सर्वेक्षण प्रकाशित किया गया था उसके अनुसार भारत में 179 भाषाएं, 544 बोलियां तथा कुल मिलाकर 1652 मातृ-भाषाएं थी। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में 1018 भाषाएं बोली जाती हैं। जिनमें 26 मुख्य हैं। संविधान की आठवीं अनुसूची में 18 भाषाओं का वर्णन किया गया है।

- **क्षेत्रवाद (Regionalis) :** भारत की सांस्कृतिक एकता को न पहचानने के कारण जनता में जो अज्ञान फैला हुआ है, राजनीतिज्ञ उससे लाभ उठाने के उद्देश्य से राजनीतिक क्षेत्रीयता की संकुचित भावनाएं फैलाते हैं। अनेक राजनीतिक दल भारत को एक राष्ट्र के स्थान पर बहु-राष्ट्रीय राज्य का झूठा प्रचार करके क्षेत्रवाद को ओर भी अधिक पुष्ट करते हैं। कार्यकुशला के स्थान पर धरती के सपूत (Sons of the Soil) का नारा इसी की उपज है तथा देश में अनेक क्षेत्रीय दल खड़े हो गए हैं। वे सभी राजनीतिक स्वार्थों के कारण राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा बनते हैं।

- **निरक्षरता (Illiteracy) :** भारत की अधिकांश जनता अशिक्षित है, जिस कारण स्वार्थी नेता स्वार्थों की पूर्ति के लिए आम जनता को आसानी से मनचाहे रास्ते पर ले जाते हैं और अनपढ़ जनता स्वार्थी नेताओं की बातों में आकर आन्दोलन के पथ पर चल पड़ती हैं। कई बार आन्दोलनकारियों को यह भी पता नहीं होता कि उनके आन्दोलन का लक्ष्य क्या है और वे किस ओर जा रहे हैं।

- स्वार्थी नेता धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि के नाम पर सीधे-सादे लोगों की भावनाओं से खिलवाड़ करते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं।
- **असन्तुलित विकास (Imbalanced Growth) :** भारत जैसे विशाल देश में समरसता पैदा करने के लिए उसके सभी भागों और इलाकों का सन्तुलित विकास का लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग और व्यक्ति को मिलना चाहिए। लेकिन सन् 1947 से आज तक यह सम्भव नहीं हुआ है। इससे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या और अधिक जटिल हुई है।
 - **साम्प्रदायिकता (Communalism) :** भारत एक बहुधर्मी राज्य है। यहाँ अनेक धर्मों के लोग रहते हैं। भारतीय संविधान में यद्यपि धर्म-निरपेक्ष शासन-प्रणाली की व्यवस्था की है, परन्तु भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या ने दिन प्रतिदिन अधिक गम्भीर रूप धारण किया है। वर्तमान समय में लोगों को अपने राष्ट्र की अपेक्षा अपने धर्म के साथ अधिक प्रेम हैं। लोग धर्म के आधार पर साम्प्रदायिक समूहों में विभाजित किए जा रहे हैं तथा धर्म के नाम पर अनेक साम्प्रदायिक विवाद पैदा होते रहते हैं। विभिन्न धर्मों के लोगों में साम्प्रदायिक सद्भावना की अपेक्षा घृणा तथा अविश्वास की भावना बढ़ी है। यह साम्प्रदायिकता ही 1947 में भारत के दो भागों में विभाजन का कारण बनी थी। 6 दिसम्बर, 1992 को अयोध्या में कार सेवकों ने विवादित ढांचे बाबरी मस्जिद को तोड़ दिया जिस पर देश के विभिन्न भागों में भीषण साम्प्रदायिक दंगे-फसाद हुए। इन दंगों ने 1947 के साम्प्रदायिक दंगों की याद ताजा कर दी। ऐसे दंगों से भारत की एकता तथा अखण्डता खतरे में पड़ गई।
 - **गरीबी (Poverty) :** गरीबी राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में महत्वपूर्ण बाधा है। भारतीय समाज की एक विशेषता गरीबी है। गरीब व्यक्ति अपने आपको और अपने परिवार को जीवित रखने के लिए संघर्ष में जुटा रहता है। जब एक गरीब व्यक्ति या गरीब वर्ग किसी दूसरे व्यक्ति या वर्ग को खुशहाल पाता है तो उसमें निराशा और घृणा की भावना उत्पन्न होती है और निराशा राजनीतिज्ञ ऐसे

अवसरों का लाभ उठाकर आन्दोलन करवाते हैं। जो क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से पिछड़े होते हैं, वे आर्थिक विकास के लिए आन्दोलन करते हैं और कई बार अलग राज्य की मांग भी करते हैं।

- **समाजवाद की असफलता (Failure of Socialism)** : समाजवाद की असफलता ने भी राष्ट्रीयकरण की समस्या को पैदा किया है। यदि समाजवाद सफल हो जाता तो आर्थिक विकास का फल सभी को चखने को मिलता, अब बेरोजगारी, पिछड़ापन, गरीबी, आर्थिक असमानता आदि ऐसे ही विघटनकारी आर्थिक तत्व हैं जो देश में भावनात्मक एकता पैदा नहीं होने देते, जिससे गम्भीर राजनीतिक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं और देशकी राजनीतिक व्यवस्था को खतरा पहुँचता है।
- **भ्रष्टाचार (Corruption)** : भारतीय प्रशासन एक महत्वपूर्ण भ्रष्टाचार है और इसने भी राष्ट्रीय एकीकरण में बाधा पहुँचाई है। प्रशासन में भ्रष्टाचार का बोलबाला है और चारों तरफ भाई-भतीजावाद चल रहा है। जिसके कारण जनता का विश्वास प्रशासन के प्रति नहीं रहा। इसके फलस्वरूप दंगे-फसाद होते हैं जो राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधक हैं हिंसा और अराजकता के वातावरण ने राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या को और अधिक गम्भीर बनाया है।
- **क्षेत्रीय दल (Regional Parties)** : क्षेत्रीय दलों में वृद्धि राष्ट्रीय एकीकरण के लिए एक समस्या है। भारत में राष्ट्रीय दलों के मुकाबले में क्षेत्रीय दलों की संख्या बहुत अधिक है। क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय हित को महत्व न देकर क्षेत्रीय हितों पर जोर देते हैं। क्षेत्रीय दल अपने राजनीतिक लाभ के लिए लोगों की क्षेत्रीय भावनाओं को भड़कते हैं। आजकल कई राज्यों में क्षेत्रीय दल सत्ता में हैं। क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय हितों को हानि पहुंचाते हैं।
- **विदेशी ताकतें (Foreign Powers)** : विदेशी ताकतें कुछ वर्षों से भारत में अस्थिरता पैदा करने की कोशिश कर रही हैं। भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने कई बार कहा कि विदेशी ताकतों से भारत की एकता व अखण्डता को खतरा

है। पाकिस्तान खुले रूप में पंजाब तथा जम्मू-कश्मीर से आतंकवादियों को आधुनिक हथियार और वित्तीय सहायता दे रहा है।

- **समतायुक्त समाज निर्माण में असफलता (Failure in Building of the Equalitarian Society) :** संविधान निर्माताओं ने धनी-निर्धन, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े स्पर्श्य-अस्पर्श्य आदि के सभी भेदभावों को समाप्त करके देश में समतायुक्त समाज के निर्माण का स्वप्न संजोया था। किन्तु देश के आजाद होने के बाद से गरीब व्यक्ति और अधिक गरीब हुआ है तथा अमीर और अधिक अमीर हुआ है। फलतः महलों के साथ झुग्गी-झोपड़ियों की संख्या में हुई बेतहाशा वृद्धि से आर्थिक और सामाजिक असन्तुलन लगातार बढ़ता जा रहा है। इससे जहाँ अमीर वर्ग निर्धन एवं गरीब वर्ग के प्रति अत्यन्त हीनता का भाव रखता है वहाँ दूसरी और साधन हीन वर्ग के मन में इस समृद्धिशाली वर्ग के विरुद्ध जबरदस्त ईर्ष्या, द्वेष और घृणा पनपती है। ऐसे हालात के राष्ट्रीय एकीकरण को बनाए रखना कठिन है।
- **दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली (Defective Educational System) :** भारत की शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। हमारी शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों में चरित्र का निर्माण और अनुशासन कायम करने में सफल नहीं हुई। नैतिक और राष्ट्रीय मूल्यों का विकास नहीं हो रहा। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि अधिकांश शिक्षा संस्थाएं निजी व्यक्तियों तथा संस्थाओं के हाथ में हैं। भारतीय शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय एकीकरण की भावना विकसित करने में सफल नहीं रही।

राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधाओं को दूर करने के उपाय

(Methods to remove the Hindrances in the way of National Inlegzation)

भारत की अखण्डता व एकता को बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय एकीकरण अति आवश्यक है। बिना राष्ट्रीय एकीकरण के राष्ट्रीय अखण्डता को कायम नहीं रखा जा सकता। अतः राष्ट्रीय अखण्डता को बनाए रखने के लिए उन बाधाओं को दूर करना

आवश्यक हैं जो राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में रोड़ा अटकाए हुए हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए :

- **आर्थिक विकास (Economic Development)** : राष्ट्रीय एकीकरण लाने के लिए देश का आर्थिक विकास करना अति आवश्यक है। बेरोजगारी को दूर करके आर्थिक विषमता को कम करके, गरीबी को दूर करके तथा आर्थिक लाभों को न्यायपूर्ण ढंग से वितरित करके ही राष्ट्रीय एकीकरण की सम्भावना को बढ़ाया जा सकता है।
- **समुचित शिक्षा व्यवस्था (Proper Educational System)** : समुचित शिक्षा व्यवस्था राष्ट्रीय एकीकरण लाने के लिए महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा प्रणाली देश की आवश्यकताओं के अनुकूल होनी चाहिए। शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद आदि की समस्याओं को हल किया जा सके। विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रम ऐसे होने चाहिए जिससे विद्यार्थियों में यह चेतना पैदा हो कि वे पहले भारतीय हैं और बाद में पंजाबी, बंगाली, मराठी। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो विद्यार्थियों में धर्म—निरपेक्ष दृष्टिकोण तथा नैतिक मूल्यों को विकसित करने में सहायक हो।
- **भाषायी समस्या का समाधान (Solution of Language Problems)** : राष्ट्रीय एकीकरण को बनाए रखने के लिए भाषायी समस्या का समाधान करना अति आवश्यक हैं। राज्यों के पुनर्गठन पर दुबारा विचार करना चाहिए तथा जिन लोगों की भाषा के आधार पर मांग न्यायसंगत है, उस राज्य की स्थापना की जानी चाहिए।
- **सामाजिक समानता (Social Equality)** : समाज में विशेष रूप से हिन्दू समाज में प्रचलित ऊँच—नीच की भावना प्रभावशाली ढंग से दूर की जानी चाहिए। पिछड़े हुए वर्ग और हरिजनों में किसी प्रकार की हीनता न रहे और कानूनी संरक्षण दिया जाए। इसी प्रकार की व्यवस्था अल्पसंख्यकों के लिए भी करनी चाहिए।

- **प्रशासन में जनता का विश्वास होना (Faith of People in Administration)** : प्रशासनिक क्षेत्र में मन्त्री और सरकारी कर्मचारी ईमानदार, निष्पक्ष और कार्यकुशल हो। इससे जनता में उनके प्रति विश्वास पैदा होगा। विश्वास के अभाव में बहुत से व्यर्थ के आन्दोलन चलाए जाते हैं और राष्ट्र को उससे हानि होती है।
- **राष्ट्रीय संस्कृति का विकास (Development of National Culture)** : भारत की संस्कृति प्राचीन और आदर्शमय है। यदि उसका ठीक रूप से विकास किया जाए तो एक राष्ट्रीय संस्कृति का विकास हो सकेगा। जिससे सामाजिक, भावनात्मक और राष्ट्रीय संस्कृति का विकास हो सकेगा और सामाजिक, भावनात्मक और राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहन मिलेगा।
- **समस्याओं का शीघ्र-से-शीघ्र निराकरण (Quick Solution of Problems)** : भारत में बहुत से आन्दोलन इस कारण से हिंसात्मक बन जाते हैं क्योंकि उनकी समस्या को सुलझाने का उचित प्रयत्न नहीं किया जाता। असम और पंजाब के आन्दोलन इस तथ्य के उदाहरण हैं। समस्या चाहे भाषा से सम्बन्धित हो या अर्थ से सम्बन्धित हो या अन्य कोई भी हो उसका शीघ्र से शीघ्र निराकरण होना चाहिए।
- **संकीर्ण भावनाओं को दूर करने के प्रयत्न (Removal of Narrow Feelings)** : राष्ट्र की अखण्डता के लिए सबसे अधिक हानिकारक तत्व लोगों की संकीर्ण भावनाएं हैं। इनको दूर करने के लिए जहाँ उदार शिक्षा एक साधन है, वहाँ समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और प्रचार के साधनों द्वारा लोगों में उदार दृष्टिकोण का विकास किया जाना चाहिए।
- **विदेशियों पर निगाह रखना (To Watch the Foreigners)** : संसार के बहुत से राज्य भारत के विकास से प्रसन्न नहीं हैं। वे चाहते हैं कि भारत में ऐसी गतिविधियां पैदा की जाए जिससे कि यह एक महान राष्ट्र न बन सके। भारत में देश द्रोहियों का अभाव नहीं है। विदेशी ताकतें इनके सहारे से देश में

गड़बड़ी कराती रहती है। इन पर कड़ी निगरानी रखी जाए। यदि इन विदेशियों की गतिविधियाँ भारत के अहित में हो तो कठोर-से-कठोर कार्यवाही की जाए। ऐतिहासिक आधार पर सिद्ध हुए विदेशी शत्रुओं का किसी भी रूप में विश्वास नहीं किया जाना चाहिए।

- **भ्रष्टाचार को दूर करना (To end corruption)** : राष्ट्रीय एकीकरण लाने के लिए प्रशासन से भ्रष्टाचार समाप्त करना आवश्यक है। भाई-भतीजावाद बन्द होना चाहिए।
- **राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान (To Honour National Symbols)** : राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि सभी भारतीय राष्ट्रीय प्रतीकों को सम्मान करें। राष्ट्रीय झण्डे और राष्ट्रीय गीत का सम्मान करना सभी का कर्तव्य है।
- **मूल्यों पर आधारित राजनीति (Value-based Politics)** : राष्ट्रीय एकीकरण के विकास के लिए यह आवश्यक है कि राजनीति सिद्धांतों व मूल्यों पर आधारित हो। राजनीतिज्ञों को धर्म, जाति, भाषा, अल्पसंख्यक आदि की राजनीति से मुक्त होना पड़ेगा। पिछले कुछ वर्षों से कुछ नेताओं ने मूल्यों पर आधारित राजनीति की बात कही है, परन्तु आवश्यकता इसको अपनाने की है।
- **साम्प्रदायिक संगठनों पर प्रतिबन्ध (Restrictions on Communal Organisations)** : राष्ट्रीय अखण्डता व एकता को बनाए रखने के लिए साम्प्रदायिक संगठनों एवं दलों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाने चाहिए। परन्तु इसके साथ-साथ ही आवश्यक है कि आम जनता को इस प्रकार के प्रतिबन्धों के औचित्य के सम्बन्धों में प्रशिक्षित किया जाए। 10 दिसम्बर, 1992 को केन्द्रीय सरकार ने विश्व हिन्दू परिषद्, बजरंग दल, शिव सेना, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, जमायते इस्लामी हिंदू, मजलिसए-मुशावरत तथा इस्लामिक सेवक संघ पर प्रतिबंध लगाया था।

भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर किए गए विभिन्न प्रयास

(Efforts made at Governmental and Non-Governmental Level to Promote National Integration in India)

भारत में राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता को बनाए रखने के लिए समय-समय पर जो प्रयास किए गए हैं, वे निम्नलिखित हैं :

राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन, 1961 (National Integration Conference, 1961)

पं० जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से 28 सितम्बर, 1961 को राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन हुआ जिसमें राष्ट्रीय एकता की समस्या पर विचार किया गया। जो मुख्य निर्णय लिए गए थे वे इस प्रकार हैं –

- प्रथम, प्रत्येक व्यस्क नागरिक यह प्रतिज्ञा करे कि वह झगड़े का निपटारा शान्ति-पूर्वक ढंग से करेगा।
- दूसरे, शिक्षा पद्धति में इस प्रकार सुधार लाया जाए जिससे हिन्दी का विकास हो।
- तीसरे, राजनीतिक दलों, समाचार पत्रों, छात्रों और जनता के लिए आचार संहिता को निश्चित किया जाए।
- चौथे, आर्थिक विकास में पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाए।

इस एकता सम्मेलन में अपनी सिफारिशों को लागू करने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना भी की गई थी।

1963 में संविधान का 16वां संशोधन किया गया। इस संशोधन का उद्देश्य भारत की अखण्डता और प्रभुसत्ता को सुरक्षित रखना है। इस संशोधन द्वारा यह निश्चित किया गया कि राज्य विधानमण्डल या संसद का लड़ने से पहले तथा चुने जाने के बाद प्रत्येक उम्मीदवार को यह शपथ लेनी पड़ती है कि “मैं भारतीय संविधान के प्रति वफादार रहूंगा और भारत की अखण्डता को बनाए रखूंगा।” 42वें संशोधन

द्वारा प्रस्तावना में संशोधन करके राष्ट्र की एकता के साथ अखण्डता शब्द भी जोड़ दिया गया है।

राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन, 1968

(Re-organisation of National Inligration : Council 1968)

भारत सरकार ने मार्च, 1968 में राष्ट्रीय एकता परिषद् की स्थापना की, जिसमें सभी क्षेत्रों के 55 सदस्य थे। जून, 1968 में इसकी बैठक हुई, जिसमें निम्नलिखित विषयों पर सुझाव दिए गए थे। ये सुझाव क्षेत्रीय एकता, साम्प्रदायिकता और शिक्षा सम्बन्धी थे। यह भी सुझाव दिया गया कि जो व्यक्ति अफवाहें फैलाते हैं, उन्हें दण्ड देना चाहिए। पुलिस अधिकारी, जो अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते, उन्हें पद से हटाने का सुझाव दिया गया था। राज्यों को अधिक सहायता उनके पिछड़ेपन के आधार पर दी जानी चाहिए।

राष्ट्रीय एकीकरण के लिए सात-सूत्री कार्यक्रम

(Seven Point Action Programme for National Integration)

जून 1975 में आन्तरिक आपातकालीन घोषणा के बाद श्रीमती गांधी ने राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या पर विचार करने के लिए दो समितियों का गठन किया। इनमें एक समिति के अध्यक्ष ब्रह्मानन्द रेड्डी और दूसरी समिति के अध्यक्ष प्रो० नुरुल हसन थे। ब्रह्मानन्द रेड्डी की अध्यक्षता में 28 नवम्बर, 1976 को दिल्ली में एक बैठक आयोजित की गई, जिसमें राष्ट्रीय एकता के लिए सात-सूत्री कार्यक्रम तैयार किया गया। ये सात सूत्र छात्र हिंसा, औद्योगिक सम्बन्ध उग्रपंथियों की हिंसा, अल्पसंख्यक, हरिजनों से अच्छा बर्ताव, अनुसूचित जन-जातियों तथा क्षेत्रीय समता से सम्बन्धित है।

1. इसमें कहा था कि विद्यार्थियों की उचित भागों पर विचार किया जाना चाहिए और छात्रों को राजनीति से दूर रहने के लिए कहा जाना चाहिए।
2. एक में एक ही मजदूर संघ के आदर्श का प्रचार करना चाहिए।
3. आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों का आर्थिक विकास करना चाहिए।
4. अल्पसंख्यक वर्ग के छात्रों को देश के प्रगतिशील शिक्षा संस्थानों में भर्ती होने के लिए प्रेरणा और सुविधाएं दी जानी चाहिए।

5. स्वयंसेवी संस्थाओं को चाहिए कि अल्पसंख्यक समाज को युवकों और औरतों को रोजगार कार्यालय में नाम दर्ज कराने और लोक सेवा संघ आयोग विज्ञापित रिक्त स्थानों के लिए प्रार्थना-पत्र देने के लिए प्रेरित करें।
6. अल्पसंख्यक छात्रों से दूर रहने और नफरत पैदा करने वाले तत्वों के विरुद्ध प्रशासनिक कार्यवाही की जानी चाहिए।
7. हरिजनों के बर्ताव के सम्बन्ध में आठ सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। हरिजनों के विरुद्ध भेदभाव को रोकने और विशेष मामलों की तुरन्त जांच करने तथा अपराधियों को प्रभावशाली और उचित सजा देने की मांग की गई है। जनजातियों के विकास के लिए व्यापक नीति बनाई गई। आर्थिक असमानता को दूर करने के लिए पिछड़े क्षेत्रों को केन्द्रीय सहायता देने की मांग की गई है।

हम एक हैं, प्रदर्शनी का आयोजन

1979 में गांधी जयन्ती के अवसर पर हम एक है, प्रदर्शनी का आयोजन किया गया, जिसमें यह दिखलाया गया कि भारत की एकता को बनाए रखने के लिए क्या किया जाए।

राष्ट्रीय एकता की दिशा में

1981 में साम्प्रदायिक सद्भाव सम्बन्धी राष्ट्रीय परिषद् की सिफारिशों के अनुसार गठित की गई। उसकी बैठक 24 अप्रैल, 1981 को हुई, जिसमें ये सिफारिशें की गई : प्रथम, राज्य तथा जिला स्तरों पर राष्ट्रीय एकता समितियों गठित की जाएं। दूसरे, साम्प्रदायिक विवादों को राजनीति से ऊपर रखा जाए। तीसरे, राज्य सरकारें इस विषय में अपने कोष का मूल्यांकन करे। इसी प्रकार की दो बैठकें 4 अप्रैल, 1981 और 22 सितम्बर 1981 को हुई थी।

राष्ट्रीय एकता के लिए प्रयत्न

राष्ट्रीय एकता के लिए 1981 और 1983 में भी इसी प्रकार की बैठकें की गई तथा 1984-1985 में भी ऐसी बैठकें हुई।

राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् का बैठक अप्रैल 1986

जनवरी 1984 के बाद राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की बैठक 7 अप्रैल, 1986 को हुई, जिसमें मुख्य 'पंजाब' में उग्रवादियों की समस्या पर विचार करना था। इस परिषद् का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी द्वारा किया गया। इस परिषद् में राज्यों के मुख्य मन्त्रियों, राजनीतिक दलों के नेताओं और सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने भाग लिया। इस परिषद् ने साम्प्रदायिकता को दूर करने के लिए राष्ट्रीय नीति का निश्चित करने पर विचार हुआ। पंजाब में लगातार हिंसा तथा सामाजिक तनाव से जो खतरा पैदा हुआ है, उसे दूर करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए :

1. धार्मिक स्थानों के प्रयोग के विषय में सहमति होनी चाहिए।
2. उग्रवादियों की समस्या गांधीवादी सिद्धान्तों के आधार पर सुलझानी चाहिए।
3. जनता को खुलकर उग्रवादियों का विरोध करना चाहिए।
4. राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता निश्चित की जाए।
5. धर्म निरपेक्षता के आधार पर शिक्षा संस्थानों में शिक्षा दी जानी चाहिए।
6. अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं पर चौकसी बरतनी चाहिए।

तत्कालीन गृहमन्त्री पी०वी० नरसिम्हा राव ने इस बात पर बल दिया कि राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् को राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए कार्य करना चाहिए।

राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन 3 फरवरी, 1990

(Re-organisation of National Integration Council, February 3, 1990)

राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार 3 फरवरी, 1990 को राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री वी०पी० सिंह की अध्यक्षता में गठित इस परिषद् के सदस्यों में सात केबिनेट मन्त्री, आठ राष्ट्रीय परिषद् राजनीतिक दलों के प्रमुख, सत्रह मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय दलों के प्रतिनिधि, 40 प्रतिष्ठित व्यक्ति, तेरह पत्रकार, पांच महिलाएं, 5 श्रमिक प्रतिनिधि, 3 आयोगों के अध्यक्ष तथा उद्योग क्षेत्र के राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक हुई, जिसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री वी०पी० सिंह ने घोषणा की कि देश की एकता व अखण्डता को तोड़ने के लिए सक्रिय विरोधी ताकतों से सरकार

किसी तरह का समझौता नहीं करेगी। परिषद् ने असम में बढ़ते पृथकतावाद, कश्मीर के आतंकवाद, पंजाब की हिंसा तथा देश के अन्य भागों में फैलते जातिवाद और साम्प्रदायिकता पर गहरी चिन्ता व्यक्त की। साम्प्रदायिकता पर अकुंश लगाने के लिए कार्य योजना समिति बनाने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया गया। राम जन्मभूमि बनाम बाबरी मस्जिद विवाद के बारे में एकता परिषद् ने सभी सम्बन्ध पक्षों में अधिकतम संयम बरतने का आग्रह किया और यह अपील की कि इस विवाद को जल्द से जल्द निपटाया जाएगा। तत्कालीन प्रधानमंत्री वी०पी० सिंह ने कहा था कि राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक वर्ष में तीन बार होगी।

राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन व बैठक

अक्टूबर 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने राष्ट्रीय एकता परिषद् का पुनर्गठन किया और 2 नवम्बर 1991 के राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक राम जन्मभूमि बनाम बाबरी मस्जिद मामले की पृष्ठभूमि में देश में साम्प्रदायिक सद्भाव कायम रखने के उपायों पर विचार करने के लिए बुलाई गई। राम जन्मभूमि बनाम बाबरी मस्जिद विवाद पर एकता परिषद् की बैठक सफल रही। राव ने परिषद् की बैठक में आम राय बनाने का प्रस्ताव रखा और इसके उत्तर में लगभग सभी नेताओं ने यही कहा कि या तो सभी सम्बद्ध पक्ष अदालत का आदेश माने या फिर बातचीत द्वारा विवाद को हल करें। उत्तरप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री कल्याण सिंह को आश्वासन देना पड़ा कि सरकार हर हालत में बाबरी मस्जिद की रक्षा करेगी। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता परिषद् की बैठक साम्प्रदायिक तनाव को कम करने में सहायक सिद्ध हुई।

अनौपचारिक संगठनों द्वारा किए गए कार्य

अनौपचारिक संगठनों में दो संगठन महत्वपूर्ण हैं : (1) इन्सानी बिरादरी तथा (2) अखिल भारतीय साम्प्रदायिकता विरोधी समिति। इन्सानी बिरादरी की स्थापना अगस्त 1970 में की गई। श्री जयप्रकाश नारायण को संगठन का अध्यक्ष और शेख अब्दुल्ला को उसका उपाध्यक्ष बनाया गया। परन्तु यह संगठन प्रभावशाली समिति नहीं हुआ क्योंकि यह संगठन यह भी निश्चित नहीं कर पाया कि देश में किन संगठनों को साम्प्रदायिक संगठन कहा जाए। अखिल भारतीय साम्प्रदायिकता विरोधी समिति की

नेता श्रीमती सुभद्रा जोशी थी। इस संगठन का विश्वास है कि देश में साम्प्रदायिक दंगों के लिए साम्प्रदायवाद की संगठित शक्तियां उत्तरदायी हैं इनमें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ सबसे अधिक प्रमुख हैं। इस समिति का छठा सम्मेलन 1974 में दिल्ली में हुआ था। इस सम्मेलन में साम्प्रदायिक संगठनों पर कानूनी प्रतिबंधों को लगाने की बात कही गई। इस समिति का कहना था कि जनसंघ जैसे साम्प्रदायिक संगठनों के प्रतिनिधियों को राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् में स्थान नहीं दिया जाना चाहिए तथा शिक्षा प्रणाली को धर्म-निरपेक्ष बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। मार्च 1987 में पंजाब के कई स्थानों पर सर्वदलीय सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों में राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को बनाए रखने के संकल्प किए गए। कांग्रेस (इ) ने राजीव गाँधी के नेतृत्व में 10 मई 1990 को राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा साम्प्रदायिक सौहार्द की और लोगों का ध्यान खींचने के लिए 12 घंटे का देशव्यापी उपवास कार्यक्रम आयोजित किया।

4.7.4 निष्कर्ष

भारत एक विशाल देश है। भारत में संविधान के अन्तर्गत लोकतंत्र धर्म-निरपेक्षता तथा समाजवाद की धारणा को अपनाया गया है। लेकिन इतना होने के बावजूद भी कुछ समाज-विरोधी तथा राष्ट्र-विरोधी तत्व भारत की एकता एवं अखण्डता के मार्ग में बाधा बने हुए हैं। भारत में किसी भी नागरिक के साथ किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता है। लेकिन फिर भी राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। इस समस्या के उचित समाधान पर भी भारतीय राष्ट्र सरकार, राजनीतिक दलों तथा गैर-सरकारी संस्थाओं और संगठनों द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण के कार्य की सफलता को विश्वसनीय बनाने के लिए भरपूर प्रयत्न किए जाने चाहिए। इस मन्तव्य के लिए जो भी कदम उठाए जाने अनिवार्य हैं, उन कदमों को उठाने में देरी नहीं की जानी चाहिए। वर्तमान समय में भारतीय राष्ट्र काफी गम्भीर अवस्था में से गुजर रहा है। इसलिए यह अनिवार्य है कि राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की सिफारिशों को वास्तविक रूप देने के अतिरिक्त अन्य प्रत्येक प्रकार के ऐसे कदम उठाए जाए जिससे भारतीय लोगों का भावनात्मक तथा राष्ट्रीय एकीकरण हो सके।

अनेक रूपता भारतीय जीवन का विशिष्ट गुण रहा है। संविधान द्वारा 'अनेकता में एकता' की प्राप्ति का अनूठा प्रयास किया गया, किन्तु संविधान के क्रियान्वयन के पश्चात् इन विविधताओं से देश की एकता को खतरा पैदा हो गया और प्रादेशिकता, भाषावाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, आर्थिक विषमता, अस्पृश्यता आदि देश की प्रमुख समस्याएं बनी हुई हैं। अतः इन समस्याओं के निराकरण का प्रयास प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है।

4.7.5 मुख्य शब्दावली

- साम्प्रदायिकता – धर्म के आधार पर लोगों में वैमनस्य
- अस्पृश्यता – छुआछूत
- अल्पसंख्यक – वो जातियाँ जिनकी जनसंख्या कम है

4.7.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत में राष्ट्र-निर्माण गतिविधियों के लिए खतरा उत्पन्न करने वाले प्रमुख विषयों और समस्याओं को पहचानिए।
2. राष्ट्रीय एकीकरण से आप क्या समझते हैं ? भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में कौन-कौन सी बाधाएँ हैं ?
3. भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा डालने वाले विभिन्न कारकों की समीक्षा कीजिए।
4. राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में कौन-सी बाधाएँ हैं।
5. राष्ट्रीय एकीकरण के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए ?

4.7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, "दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया", पैनेटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, "इण्डियन कान्स्टीट्यूशन", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966

- रजनी कोठारी, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, "कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, "दा ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया", प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, "डायनामिक्स ऑफ इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पालिटिक्स", स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, "स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग", एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, "दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस", सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, "दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फ़ैडरलिज्म", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश, "पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेन्डन्स", II एडिशन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियॉड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्ोरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, "डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस," एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, "स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया", वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998

- अतुल कोहली, "डेमोक्रेसी एण्ड डिशकनटेन्ट : इण्डियाज ग्राईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, "दा सक्शेश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेसी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, "पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, "कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, "इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, "तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

4.8 पंचायती राज (Panchayati Raj)

4.8.1 परिचय

लोकतंत्र की वास्तविक क्रियान्वित तभी पूरी मानी जाती है जब शासन के सभी स्तरों पर लोगों की भागीदारी हो। जनसाधारण का शासन से सीधा सम्पर्क तथा उनकी नागरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का आरम्भ स्थानीय स्तर से ही आरम्भ होता है। यह स्थानीय क्षेत्र चाहे शहर हो या गाँव। इसलिए इन स्तरों पर नागरिक सुविधाओं को पहुंचाने, विकास कार्यो सम्बन्धी निर्णय लेने, उन्हें लागू करने तथा इस स्तर पर लोगों की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को एकत्रित करने के लिए किसी न किसी रूप में संस्थाएं बनाई जाती है। लोकतांत्रिक सिद्धान्तों की मांग है कि यह संस्थाएं प्रतिनिधितात्मक और उत्तरदायी हो। इसलिए लोकतांत्रिक देशों में स्थानीय स्वशासन को महत्व दिया जाता है। भारत की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गाँवों में रहती है। इसलिए ग्रामीण स्तर पर स्वशासन का विशेष महत्व है। इस सम्बन्ध में देश में पंचायती राज की स्थापना की गई है। परन्तु पंचायती राज संस्थाएं केवल संरचनात्मक ढांचे ही नहीं हैं लोगों को राजनीति में लाने तथा ग्रामीण स्तर पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया को ले जाने में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए इनका विश्लेषण तथा मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है।

भारत में अंग्रेजी उपनिवेशवाद के समय से ही स्थानीय शासन के महत्व को समझा जाने लगा था। प्रशासन की इकाई जिला स्थापित की गई थी। जिला स्तर पर प्रशासन की व्यवस्था जिला अधिकारी के अधीन थी। जिला अधिकारी को कलक्टर, जिलाधीश (Collector, District, Magistrate) इत्यादि नामों से भी पुकारा जाता था। जिले में कानून तथा शान्ति की व्यवस्था करना, राजस्व इक्ठठा करना तथा विकासीय कार्यो को करना, तीनों ही क्षेत्र जिला अधिकारी के अधीन थे। जिला अधिकारी सामान्यतः भारतीय प्रशासनिक सेवा का अफसर हुआ करता था।

1882 में लार्ड रिपन के शासन के कार्य काल में स्थानीय स्तर पर प्रशासन में लोगों को शामिल करने के कुछ प्रयास आरम्भ हुए। इसके लिए जिला स्तर पर जिला बोर्डों की स्थापना की गई। इनमें स्थानीय लोगों को मनोनीत किया जाता था। भारत के गांवों में सदियों से प्रचलित पंचायत व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के प्रति भी कुछ कदम उठाए गए। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में पंचायतों की परम्परा को छोटे गणराज्य कह कर उनकी प्रशंसा की जाती थी। महात्मा गांधी विशेष रूप से पंचायतों के प्रशंसक थे। भारत में स्वशासन की अत्यन्त पुरानी परम्परा के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। इसलिए गांधी जी की यह धारणा भी थी कि स्वतंत्र भारत का आधार गांवों से ही आरम्भ होगा। हर गांव, उन मामलों को छोड़कर जहां अन्यो के साथ निर्भरता आवश्यक है, अपने आप में स्वतंत्र तथा आत्म निर्भर होगा। राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा महत्व दिए जाने के कारण तथा स्वयं ब्रिटिश शासन द्वारा लोगों को अपने प्रशासन में शामिल करने के लिए 1930 तथा 1940 के दशक में अनेक प्रान्तों में पंचायती राज लागू करने के कुछ कानून बनाए गए। स्वाभाविक रूप से यह सीमित तथा अपर्याप्त थे।

4.8.2 उद्देश्य

- पंचायती राज का गठन कैसे होता है
- पंचायती राज से सम्बन्धी संवैधानिक प्रबन्धों को जानना
- भारतीय लोकतन्त्र में पंचायत राज की महत्ता क्या है
- पंचायती राज—व्यवस्था की क्या कमियाँ है
- इन कमियों को कैसे दूर किया जा सकता है

4.8.3 संविधान तथा पंचायती राज (Constitution and Panchayati Raj)

राष्ट्रीय आन्दोलन के समय महात्मा गांधी ग्रामीण स्वतंत्रता तथा स्थानीय प्रशासन की वकालत करते रहते थे, वहां आन्दोलन के अन्य प्रमुख नेता पश्चिमी विचारों से प्रभावित थे। उनके अनुसार राज्य निर्माण तथा विकास के लिए केन्द्रीकृत राष्ट्र राज्य की अवधारणा महत्वपूर्ण थी। अतः जब संविधान निर्माण का कार्य शुरू

हुआ। उस समय गांधी जी के विचारों के विशेष महत्व नहीं दिया गया। संविधान के प्रथम प्रारूप में पंचायती राज संस्थाओं का कोई प्रयोजन नहीं रखा गया। जब महात्मा गांधी और उनके समर्थकों को यह पता चला तो उन्होंने अपना असन्तोष प्रकट किया और इस बात के लिए दबाव डाला कि पंचायती राज को संविधान में स्थान दिया जाए ताकि भविष्य में निर्मित होने वाले भारत का आधार लोकशक्ति बन सकें। इस दबाव के कारण तथा गांधी जी की भावनाओं का आदर मात्र करने के लिए संविधान के अन्तिम रूप में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अध्याय में अनुच्छेद 40 में राज्य को निर्देश दिया गया कि वह गांवों में पंचायतों की स्थापना करने तथा उन्हें ऐसी शक्तियां देने के लिए उचित कदम उठाएगा जो स्थानीय स्वशासन करने का कार्य राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया क्योंकि पंचायती राज विषय राज्य सूची में रखा गया था। निस्संदेह अन्य नीति निर्देशक सिद्धान्तों की तरह अनुच्छेद 40 भी न्यायबाध्य नहीं था और इसका लागू करना राज्यों की इच्छा पर था। संविधान लागू होने के आरम्भिक वर्षों में इस दिशा में कोई विशेष कदम नहीं उठाये गए। बाद में नियोजन के संदर्भ में लोगों की भागीदारी की आवश्यकता को देखते हुए इस दिशा में कुछ सोच आवश्यक हुई।

सामुदायिक विकास तथा मेहता कमेटी

(Community Development and Mehta Committee)

विकास के लिए नियोजन के आदर्श को मानने तथा योजना आयोग की स्थापना के पश्चात् 1952 में इस विचार के साथ कि योजनाओं की क्रियान्वित में लोगों की भागीदारी उचित है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरम्भ किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य था कि एक गांव या गांवों के समूह में सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा विशेषज्ञों की एक टीम भेजी जाए जो गांव के लोगों से उनकी आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त कर उन्हें यह सुझाएं कि वह किस तरह सामुदायिक आधार पर एक दूसरे की सहायता से तथा उचित संगठनों के माध्यम से स्वयं गांव या गांवों के समूह के स्तर पर ही उन आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं। सामुदायिक विकास का यह कार्यक्रम सफल नहीं रहा। इस विफलता के कारण दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान योजना

आयोग ने इस कार्यक्रम को समीक्षा के लिए 1956 में श्री बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की।

मेहता कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम इसलिए विफल रहा क्योंकि यह स्थानीय लोगों में आवश्यक रूचि पैदा नहीं कर सका। कमेटी ने सुझाव दिया कि पुराने जिला बोर्डों को समाप्त करके तीन स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की जाए। यह तीन स्तर होंगे जिला, ब्लॉक तथा गांव और इनमें सीधा सम्बन्ध और सम्पर्क होगा। हर स्तर को उसकी क्षमता तथा आवश्यकता के अनुसार शक्तियाँ हस्तान्तरित की जाएगी।

तीन स्तरों में सबसे नीचे थी ग्राम पंचायत यह ग्राम पंचायत ग्राम सभा के द्वारा चुनी जाती थी और उसके प्रति उत्तरदायी थी। गांव के सभी व्यस्क निवासी ग्राम सभा के सदस्य होने थे। वर्ष में कम से कम दो बार इसकी बैठक अनिवार्य थी। ग्राम पंचायत की सदस्य संख्या 5 से 30 के बीच सुझाई गई। इसका कार्यकाल 5 वर्ष सुझाया गया। एक गांव या गांवों के समूह के लिए एक ग्राम पंचायत की व्यवस्था सुझाई गई। पंचायती राज का दूसरा स्तर ब्लॉक समिति सुझाया गया। ब्लॉक गांवों के क्षेत्रीय समूह से बनता है। ब्लॉक समिति में कुछ सदस्य पंचायतों द्वारा चुने हुए रखे गए और कुछ पदेन जैसे ग्राम पंचायतों के सरपंच। तीसरा स्तर था जिला परिषद् जिला प्रशासन की मूल इकाई माना जाता है। पंचायती राज की तीन स्तरीय व्यवस्था में यह शिखर पर रखा गया। इनमें कुछ चुने सदस्य कुछ पदेन सदस्य जैसे ब्लॉक समितियों के अध्यक्ष तथा कुछ मनोनीत सदस्य अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं के रखे गए। जिला अधिकारी जिला परिषद् का अध्यक्ष रखा गया। इस प्रकार बलवन्त राय मेहता कमेटी ने स्थानीय स्वशासन के लिए एक तीन स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की। इस पर कानून बनाने या इन्हें मानने का अधिकार राज्य सरकारों को था।

पंचायती राज व्यवस्था के रूप (Pattern of Panchayati Raj)

बलवन्त राय मेहत कमेटी की रिपोर्ट के बाद राजस्थान तथा आन्ध्र प्रदेश पहले राज्य थे। जिन्होंने इस रिपोर्ट के आधार पर पंचायती राज व्यवस्था लागू की। इन

राज्यों में मूलतः रिपोर्ट के आधार पर ही तीन स्तरीय ढांचा स्थापित किया 1960 के दशक में अनेक अन्य राज्यों ने भी कानून बनाकर पंचायती राज लागू किया। राज्यों में इस व्यवस्था के अपने अपने कानून थे। इसलिए सभी में इसका स्वरूप एक समान नहीं था। परन्तु मुख्यतः यह व्यवस्था दो प्रकार की थी। राजस्थान तथा आन्ध्रप्रदेश ने मुख्यतः मेहता कमेटी की रिपोर्ट को आधार माना। इसमें जिला परिषद् ब्लॉक समिति तथा ग्राम पंचायत का गठन किया गया। सर्वाधिक महत्व ब्लॉक समिति को दिया गया। जिलाधिकारी की सक्रिय भूमिका रखी गई। अनेक अन्य राज्यों ने भी इस प्रणाली को अपनाया।

महाराष्ट्र, गुजरात तथा कुछ अन्य राज्यों ने भी मूलतः मेहता कमेटी के सुझावों को माना परन्तु उन्होंने परिषद् को अधिक महत्व दिया। हरियाण, जम्मू-कश्मीर, केरल तथा कुछ अन्य राज्यों ने दो स्तरीय व्यवस्था स्थापित की। इसमें जिला परिषद् नहीं थी। तमिलनाडु तथा कर्नाटक में जिला परिषद् के स्थान पर जिला विकास परिषद् बनाई गई।

कुल मिलाकर 1980 के दशक के अन्त तक अधिकतर राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में किसी न किसी प्रकार की पंचायत राज व्यवस्था कार्य कर रही थी। इन संस्थाओं को अपने लिए धन इक्ठ्ठा करने के लिए कुछ साधन उपलब्ध थे जैसे भूमि राजस्व का एक भाग, गांव में मेलों बाजारों इत्यादि पर कर लगाने का अधिकार इत्यादि। परन्तु मुख्य रूप से धन के लिए संस्थाएं राज्य सरकार पर निर्भर थी। केवल धन ही के लिए नहीं अपितु अपने अस्तित्व के लिए भी यह राज्य सरकार की कृपा दृष्टि पर निर्भर थी, क्योंकि राज्य सरकारें इन्हें अपनी इच्छा पर निलम्बित या भंग कर सकती थी। सिद्धान्त गांव में सत्ता की राजनीति से अलग रखने के विचार से अधिकतर राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव में राजनीतिक दलों के भाग लेने पर रोक थी। व्यवहार में राजनीतिक दल अपने दलीय चिन्ह के बिना चुनावों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे।

व्यवस्था की विफलता

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के लोकतान्त्रिकरण तथा विकास के लिए पंचायतीराज एक महत्वपूर्ण प्रयोग था। सम्भावना यह थी कि लोगों के पास निर्णय लेने की शक्ति आने से तथा पंचायत संस्थाओं के सफल कार्य से ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक सहयोग, भाईचारा और आत्मविश्वास बढ़ेगा तथा सामाजिक न्याय की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिलेगा। परन्तु दुर्भाग्यवश व्यवहार में ऐसा कुछ नहीं हुआ। शीघ्र ही पंचायत संस्थाएं राजनीति सत्ता संघर्ष में फस गईं। यह ग्रामीण क्षेत्रों में पहले से स्थापित विशिष्ट और उच्च वर्गों के हितों की रक्षा का साधन बनने लगी। अपने धन, जातीय सम्बन्धों तथा सामाजिक शक्ति के आधार पर इन लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से पंचायतों पर अपना अधिकार स्थापित करना शुरू कर दिया। सरकारी अफसर तथा कार्यकर्ता एक ओर अपने जातीय तथा अन्य सम्बन्धों के कारण इन वर्गों के प्रति संवेदनशील थे तो दूसरी ओर अपनी प्रकृति तथा पृष्ठभूमि से ग्रामीण विकास तथा लोकतान्त्रिक उत्तरदायित्व के अनुकूल नहीं थे। इस प्रकार पंचायती राज संस्थाओं को चलाने के लिए जो आवश्यक प्रशासनिक सहयोग तथा समर्थन चाहिए था वह उपलब्ध नहीं था। तीसरे, राज्य सरकारें तथा विधायक पंचायतों के महत्वपूर्ण एवं सक्रिय बनने से चिन्तित थे। उन्हें भय था कि इस प्रकार जन साधारण से उनका सीधा सम्पर्क कम हो जाएगा तथा चुनावों में समर्थन के लिए वह पंचों तथा सरपंचों के सहयोग पर आश्रित हो जाएंगे। इसलिए राज्य सरकारों ने पंचायती राज संस्थाओं एवं अधिकार देने में विशेष रुचि नहीं ली।

1970 के दशक के शुरू से भारत में व्यक्तिवादी तथा शक्तियों के केन्द्रीकरण की राजनीति का विकास होने लगा। इसके साथ ही इस समय से प्रशासनिक अधिकारियों तथा राजनीतिज्ञों में सांठ-गांठ भी बढ़ने लगी। इसका सीधा परिणाम था जन प्रतिनिधियों की अवहेलना विशेष रूप से निचले स्तर पर प्रधानमंत्री द्वारा तथा राज्य स्तर पर मुख्यमंत्रियों द्वारा सत्ता के निजीकरण की प्रक्रिया ने पंचायतों को लगभग पूरी तरह से निष्क्रिय कर दिया। 1980 के दशक तक आते-आते पंचायती राज संस्थाओं की विफलता स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी। संक्षेप में इसके कारण निम्नलिखित कहे जा सकते हैं :

1. राज्य सरकारें पंचायती संस्थाओं के चुनाव नियमित रूप से नहीं करवाती थी।
2. यदि चुनाव करवाये भी जाते थे तो किसी न किसी बहाने इन संस्थाओं को निलम्बित या भंग कर दिया जाता था और लम्बे समय तक इन्हें सीधा प्रशासनिक अधिकारियों के अधीन रखा जाता था।
3. पंचायत राज संस्थाओं के पास धन के अपने संसाधन नाम मात्र थे और राज्य सरकारें अनुदान देने में अनेक प्रकार की आनाकानी करती थी।
4. ग्रामीण तथा स्थानीय स्तर पर धनी तथा शक्तिशाली वर्ग धन, हिंसा तथा बेईमानी के तरीकों से इन संस्थाओं पर नियन्त्रण बनाए हुए थे।
5. पंचायती राज संस्थाओं को प्रदान की गई प्रशासनिक सेवाएं न केवल अपर्याप्त तथा अकुशल थी अपितु अनेक मामलों में नकारात्मक थी।

अशोक मेहता कमेटी (Ashok Mehta Committee)

1977 में आपातकालीन के बाद जनता पार्टी की सरकार बनी। अपने चुनाव घोषणा पत्र में इस सरकार ने गांधीवादी व्यवस्था तथा विकेन्द्रीकरण के प्रति अपनी वचनबद्धता की घोषणा की थी। वैसे भी इस समय तक तत्कालीन पंचायती राज कार्यप्रणाली की बहुत अधिक आलोचना हो रही थी। अतः जनता पार्टी सरकार ने 1977 में ही अशोक महता की अध्यक्षता में 13 सदस्यों की एक समिति गठित की और इसे पंचायती राज व्यवस्था में सुधार के लिए सुझाव देने को कहा।

अशोक महता कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि पंचायतों को कार्य करने के उचित अवसर नहीं दिए गए, अफसरशाही ने उनके कार्यों में रूकावट डाली है, राज्य सरकारों ने धन तथा अधिकार प्रदान में संकोच किया है तथा अधिकार प्रदान में संकोच किया है तथा धनी एवं विशिष्ट वर्गों ने इस संस्थाओं को अपने अधीन रखा है। विकास तथा नियोजन में पंचायतों की भागीदारी न होने के कारण भारत में नियोजित विकास जन आकांक्षाओं के अनुकूल नहीं रहा। इसलिए मेहता कमेटी ने पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने और उन्हें कार्यशील बनाने की सिफारिश की।

अशोक मेहता कमेटी का यह विचार था कि सारे देश के लिए कोई एक निश्चित व्यवस्था होना अनिवार्य नहीं है। परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग राज्यों

में इनके भिन्न स्वरूप हो सकते हैं। फिर भी कमेटी का मत था कि जिला विकेन्द्रीकरण का पहला स्तर होना चाहिए। ब्लॉक नियोजन का स्तर न होकर केवल जिला परिषद् का कार्यकारिणी अंग होना चाहिए। कमेटी का सुझाव था कि कुछ गांवों को इक्ठ्ठा करके मण्डल पंचायतों की स्थापना की जाए। विकासीय कार्यों का मुख्य केन्द्र यह मण्डल पंचायतें हो। कमेटी ने एक प्रकार से दो स्तरीय व्यवस्था का समर्थन किया।

अशोक मेहता कमेटी ने जिला परिषद् तथा ग्राम पंचायत दोनों ही के लिए चुनाव का सुझाव दिया यद्यपि जिला स्तर पर कुछ पदेन सदस्यों की व्यवस्था भी थी। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए जनसंख्या में उनके अनुपात के अनुसार स्थान सुरक्षित रखने का सुझाव दिया गया सीधे चुनावों के साथ-साथ चुनावों में राजनीतिक दलों के भाग लेने को भी समिति ने उचित माना। आशानुसार समिति ने पंचायतों को निश्चित तथा अधिक शक्तियां तथा संसाधन प्रदान करने की सिफारिश की। 1980 में जनता पार्टी की सरकार समाप्त होने तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में पुनः कांग्रेस सरकार के गठन से समिति के सुझाव चर्चा का विषय बन कर रह गए।

पंचायती राज : संविधान संशोधन

1980 में कांग्रेस (इ) के सत्ता के आने व श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा केन्द्रीकरण की राजनीति के बावजूद देश में निर्धनता समाप्त करने के लिए चलाए जाने वाले कार्यक्रमों, विकास की आवश्यकताओं तथा जनसंतोष के लिए प्रशासन तथा विकास में पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी का महत्व स्पष्ट हो रहा था। 1983 में जिला स्तर पर नियोजन के लिए अध्ययन के लिए स्थापित श्री सी०एच० हनुमंततीया की अध्यक्षता में गठित समिति तथा 1985 में ग्रामीण विकास तथा गरीबी के विरुद्ध प्रशासनिक व्यवस्था के पुनर्निरीक्षण के लिए श्री जी०वी०के० राओ की (G.V.K. Rao) अध्यक्षता में बनाई गई समिति दोनों ने पंचायती राज की आवश्यकता पर जोर दिया। 1987 में पंचायती राज पर सुझाव देने के लिए श्री एल०एम० सिंघवी को अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने सुझाव दिया कि निचले स्तर पर नियोजन

के लिए पंचायती राज संस्थाओं का सहयोग आवश्यक है। समिति ने कहा कि पंचायत संस्थाओं को सुनिश्चित रूप देने के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन किए जाए। केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर अपनी रिपोर्ट में सरकारिया आयोग ने भी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को सुदृढ़ करने तथा उसके लिए संविधान में आवश्यक संशोधन की सिफारिश की। संसद सदस्य श्री पी०के० थुगन की अध्यक्षता में जिला स्तर पर राजनीतिक, प्रशासनिक तथा नियोजन विधि के अध्ययन के लिए गठित संसदीय समिति ने 1988 में अपनी रिपोर्ट में कहा कि जिला स्तर पर नियोजन तथा विकास के लिए केवल जिला परिषद् ही उचित माध्यम है। इस समिति ने सुझाव दिया कि पंचायती संस्थाओं के चुनाव तथा कार्यकाल को निश्चित करने के लिए संवैधानिक व्यवस्था की जाए।

इन सब समितियों की सिफारिशों और बुद्धिजीवियों तथा विशेषज्ञों द्वारा सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर जोर देने के साथ-साथ श्री राजीव गांधी भी उत्तरदायी प्रशासन की स्थापना के प्रति चर्चा कर रहे थे। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने अनेक राज्यों में जिला अधिकारियों के सम्मेलन बुलाए। इन सम्मेलनों में यह बात उभर कर आई कि उत्तरदायी प्रशासन तथा नियोजन के लिए आवश्यक था कि पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों को संवैधानिक आधार पर सुनिश्चित किया जाए। 30 जुलाई 1988 को दिल्ली में बुलाए गए मुख्य सचिवों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने घोषणा की कि पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाएगा।

उपरोक्त घोषणा के बाद सरकार ने 1989 में संसद में संविधान संशोधन के लिए 64वां संशोधन बिल प्रस्तुत किया। इस प्रस्तावित संशोधन बिल के मुख्य तत्व इस प्रकार थे :

1. सभी राज्यों में तीन स्तरीय पंचायती राज संस्थाएं होगी।
2. इन संस्थाओं के लिए चुनाव आयोग के निरीक्षण में प्रत्येक पांच वर्ष के बाद चुनाव होंगे।

3. पंचायती राज की सभी संस्थाओं में सभी स्थानों को चुनाव द्वारा भरा जायेगा, पदाधिकारी सीधे चुने हुए सदस्यों में से होंगे।
4. इन संस्थाओं में 30 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे तथा अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए जनसंख्या में प्रतिशत के आधार पर स्थान आरक्षित रहेंगे।
5. पंचायती राज संस्थाओं को राज्य सरकार से धन मिलेगा। इसके अतिरिक्त यह संस्थाएं निर्धारित मुद्दों पर कर, ड्यूटी तथा टोल आदि लगाकर भी धन इकट्ठा कर सकेगी।
6. पंचायती राज संस्थाएं अपने क्षेत्र के लोगों के लिए आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय तथा सामाजिक कल्याण के लिए योजनाएं बनाएगी।
7. पंचायती राज संस्थाओं के लेखों की कड़ी जांच की जाएगी। भारत का महालेखों परीक्षक पंचायतों के हिसाब-किताब का निरीक्षण करेंगे।

यद्यपि संविधान संशोधन प्रस्तुत करने के पीछे यह विचार व्यक्त किया गया था कि इसका लक्ष्य पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ करना और शक्तियों का विकेन्द्रीकरण था परन्तु और परिस्थितियों में यह बिल लाया गया और इसमें शामिल कुछ प्रयोजनों के कारण सामान्यतः राज्यों को यह संदेह हुआ कि संविधान का वास्तविक लक्ष्य केन्द्र सरकार द्वारा गांवों के लोगों से सीधा सम्पर्क स्थापित करना था। दूसरे शब्दों में केन्द्र राज्य सरकारों की शक्ति तथा भूमिका को कम करना चाहता था और अखिल भारतीय सेवाओं के जिला अधिकारियों की शक्ति बढ़ाना चाहता था। इस सन्देह के कारण अधिकतर विरोधी दल 64वें संशोधन के प्रस्तुत रूप से सन्तुष्ट नहीं थे। कांग्रेस के व्यापक बहुमत के कारण यह बिल लोकसभा में तो पारित हो गया। परन्तु आवश्यक बहुमत के अभाव में यह राज्य सभा में पारित नहीं हो सका।

संविधान का 73वां संशोधन (73rd Amendment of the Constitution)

राज्यों के संदेह तथा विरोधी दलों के विरोध के कारण 64वां संशोधन बिल पारित नहीं हो सका। परन्तु इस समय तक पंचायती राज के पुनर्जीवन की आवश्यकता तथा इसको महत्वपूर्ण बनाने की आकांक्षाएं आम चर्चा का विषय बन चुकी थी। 1989

के चुनावों में लगभग सभी राजनीतिक दलों ने अपने घोषणा पत्रों में इसके लिए उचित कदम उठाने की बात कही। अतः राष्ट्रीय मोर्चे के सत्ता में आने से एक उचित विधि बनने की आशा बनी। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने संशोधन बिल में कुछ परिवर्तन किए। इनके अनुसार पंचायती राज संस्थाओं का कार्य काल पांच वर्ष के लिए सुनिश्चित किया गया। इनकी स्वायत्तता की व्यवस्था की गई। चुनाव करवाने का अधिकार तथा कार्य केन्द्रीय चुनाव आयोग के स्थान पर राज्य चुनाव आयोग को सौंपा गया। इसी प्रकार लेखा परीक्षा की शक्ति राज्य लेखा परीक्षक को सौंपी गई। महिलाओं तथा अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए साधारण सदस्यों के अतिरिक्त अध्यक्ष पद के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था की गई। नये संशोधन बिल को राज्य सरकारों तथा विरोधी राजनीतिक दलों के साथ विचार-विमर्श के बाद 2 सितम्बर 1990 को लोकसभा में 74वें संविधान संशोधन बिल के रूप में प्रस्तुत किया गया। इस बिल पर चर्चा शुरू होने से पहले ही राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का पतन हो गया तथा बाद में लोकसभा भंग हो गई। परिणामस्वरूप बिल समाप्त हो गया।

1991 में चुनाव के बाद श्री पी०वी० नरसिम्हा राव के नेतृत्व में पुनः कांग्रेस की सरकार बनी। अपने स्पष्ट बहुमत की कमी तथा देश में बन चुके वातावरण के कारण इस सरकार को भी सर्वमान्य कानून बनाने की आवश्यकता महसूस हुई। अतः अनेक दलों से विचार विमर्श करके नया संशोधन बिल 16 सितम्बर 1991 को लोक सभा में पेश किया गया। सदन ने गहन विचार के लिए इस बिल को संसद के 30 सदस्यों की संयुक्त समिति को सौंप दिया। संसद के दोनों सदनों तथा विभिन्न दलों के सदस्यों से गठित इस समिति के विचार तथा सुझावों के बाद 22 सितम्बर 1992 को संविधान संशोधन (73वां) बिल लगभग पूर्ण सहमति से पारित हो गया। शीघ्र ही इस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो गए तथा 20 अप्रैल 1993 को अधिसूचना जारी होने पर देश संवैधानिक रूप से स्थापित नई पंचायती राज व्यवस्था लागू हो गई। संविधान के 73वें संशोधन से स्थापित पंचायत राज व्यवस्था के मूल तत्व निम्नलिखित हैं :

1. पंचायती राज की स्थापना के लिए संविधान में नए अनुच्छेद 243 ए से 243 डी तथा एक नई अनुसूची 11 जोड़ी गई हैं। इन अनुच्छेदों तथा अनुसूची द्वारा पंचायती राज संस्थाओं का गठन, प्रक्रिया तथा शक्तियों का वर्णन किया है।
2. सभी राज्यों में पंचायती राज का स्वरूप एक समान होगा। यह तीन स्तरीय व्यवस्था पर आधारित होगा।
3. तीनों स्तरों के सदस्यों के चुनाव सीधे प्रत्यक्ष व्यस्क मताधिकार के आधार पर होंगे जिला तथा ब्लॉक स्तर पर अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होगा। चुनाव अनिवार्य तथा निश्चित पांच वर्ष के कार्यकाल के लिए होंगे। यदि निर्धारित व्यवस्था के अनुसार किसी स्तर को पांच वर्ष से पहले भंग किया जाता है तो 6 महीने के अन्दर-अन्दर दुबारा चुनाव कराएँ जाएंगे।
4. अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए जनसंख्या में प्रतिशत के अनुपात में स्थान सुरक्षित होंगे। कम से कम एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित स्थानों के लिए चुनाव क्षेत्रों को समय-समय पर बदला जा सकता है। अध्यक्ष पद तथा अन्य पदों के लिए भी इन वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था होगी।
5. संविधान की ग्याहरवीं सूची में वर्णित शक्तियों और अधिकारों के अतिरिक्त आर्थिक नियोजन तथा विकास और सामाजिक न्याय इत्यादि सम्बन्धित योजनाएं बनाने और उन्हें लागू करने के अन्य अधिकार भी राज्य की विधायिका कानून बनाकर पंचायती राज संस्थाओं को दे सकती है।
6. राज्य विधायिका को शक्ति दी गई है कि वह कानून द्वारा पंचायती राज्य संस्थाओं को कर, टोल आदि लगाने, उन्हें एकत्रित करने तथा इस्तेमाल करने का अधिकार दे। राज्य सरकारें इन संस्थाओं को अनुदान भी दे सकती है। यह व्यवस्था भी की गई है कि प्रत्येक राज्य हर पांच वर्ष या उससे पहले एक वित्त आयोग का गठन करेगा। यह आयोग राज्य सरकार तथा स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में संसाधनों के वितरण के बारे में सुझाव देगा।

7. पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव राज्य चुनाव आयोग के द्वारा करवाये जाएंगे। इसी प्रकार पंचायती राज्य संस्थाओं के हिसाब-किताब की जांच राज्य लेखा परीक्षक के द्वारा की जाएगी।

कुल मिलाकर अब पंचायती राज संवैधानिक रूप से स्थापित तथा अनिवार्य व्यवस्था बन गया है। कुछ आलोचकों ने स्थापित की गई व्यवस्था की कुछ कमजोरियों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। यह निम्नलिखित हैं :

1. नई व्यवस्था के अनुसार सभी राज्यों में एक ही प्रकार की व्यवस्था की स्थापना की गई। कई राज्यों में यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, परम्पराओं तथा वहां के सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिकूल हो सकती है।
2. विभिन्न स्तरों पर संसद सदस्यों तथा विधायकों को संस्थाएं का पेदन सदस्य बनाया गया है यद्यपि इन सदस्यों को मत का अधिकार नहीं होगा फिर भी इनकी उपस्थिति तनाव या मतभेद उत्पन्न कर सकती है।
3. राज्यों को पंचायती राज संस्थाओं को निलम्बित तथा भंग करने के अधिकार दिए गए हैं। यद्यपि भंग करने के पश्चात् चुनाव अनिवार्य है परन्तु संविधान उन कारणों तथा परिस्थितियों का स्पष्ट वर्णन नहीं करता जिनसे ऐसा किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में राज्य सरकारें इस शक्ति का प्रयोग राजनीतिक दृष्टिकोण से कर सकती है।
4. संविधान केवल मूल आधार प्रदान करता है प्रत्येक राज्य में निश्चित व्यवस्था के लिए राज्य विधायिकाएं कानून बनाती हैं। अनेक राज्यों द्वारा बनाए कानून इस ओर इशारा करते हैं कि जनता द्वारा चुने गए सदस्यों को कम तथा सरकारी अफसरों को अधिक अधिकार दिए गए हैं अर्थात् नई व्यवस्था में पंचायती राज संस्थाएं राज्य सरकारों तथा प्रशासनिक अधिकारियों के अधीन ही हैं।

इन कमजोरियों के बावजूद भी यह महत्वपूर्ण है कि पंचायती राज अब संवैधानिक रूप से स्थापित है तथा इसकी शक्तियाँ तथा कार्यकाल सुनिश्चित हैं। इसने जन साधारण में आशाएं तथा आकांक्षायें भी जगाई हैं। इनके आधार पर लोग

अपने अधिकारों के लिए संगठित हो सकते हैं तथा सरकारों को उत्तरदायित्व के लिए बाध्य कर सकते हैं।

सफलता के लिए शर्तें (Conditions for Success)

पंचायती राज संस्थाओं तथा इनके साथ ही शहरी क्षेत्रों में नगरपालिकाओं को संविधान में स्थान प्राप्त होने से स्थानीय स्तर पर स्वशासन तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए महत्वपूर्ण आधार स्थापित हुआ है। लेकिन किसी भी व्यवस्था की सफलता मात्र संस्थाओं अथवा कानूनों पर ही निर्भर नहीं करती इसके लिए आवश्यक वातावरण, राजनैतिक इच्छा तथा जनता की जागरूकता पर निर्भर करता है। इस संदर्भ में पंचायती राज व्यवस्था की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें निम्न मानी जा सकती है :

1. पंचायती राज की मात्र स्थानीय शासन तथा नागरिक सुविधा को प्रदान करने वाली संस्थाओं के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यह आर्थिक सामाजिक विकास तथा परिवर्तन के लिए नियोजन, कार्यवाही तथा वातावरण बनाने के उचित साधन के रूप में मानी जानी चाहिए।
2. पंचायती राज संस्थाओं में समाज के विभिन्न वर्गों की भागीदारी तथा सहयोग सुनिश्चित तथा व्यवहारिक बनाना आवश्यक है। आरक्षण केवल दिखावा तथा छल बन कर न रह जाए इसके लिए आवश्यक कदम उठाने आवश्यक है।
3. आम व्यक्ति की समझ, क्षमता तथा भागीदारी की इच्छा पर विश्वास किया जाना चाहिए। केन्द्र तथा राज्य स्तर के राजनीतिज्ञों तथा अधिकारियों को अपनी स्थिति, शिक्षा अथवा प्रशिक्षण के आधार में ग्रामीण जनों की क्षमता तथा अनुभव की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।
4. पंचायती राज संस्थाओं के चुने हुए सदस्यों तथा उनके साथ काम करने वाले अधिकारियों को समय-समय पर उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इसमें उन्हें इन सदस्यों के महत्व, भूमिका, कार्यप्रणाली, अधिकारों तथा संसाधन एकत्रित करने के तरीकों के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए।

6. पंचायती राज व्यवस्था चलाने के लिए तथा देश के विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विकासीय लोक प्रशासन अत्यन्त अनिवार्य हैं देश में इसकी स्थापना तथा निर्माण को ओर अधिक नहीं टाला जाना चाहिए।

4.8.4 निष्कर्ष

उपरलिखित शर्तों को पूरा करने के लिए केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों गैर-सरकारी संगठनों, प्रशासन, समाचार पत्रों, रेडियों, दूरदर्शन तथा बुद्धिजीवियों सभी के सहयोग की आवश्यकता है। पंचायती राज की सफलता के लिए ग्रामीण स्तर पर स्थानीय स्वशासन की सक्रियता के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है अपितु यह देश में लोकतंत्र के विकास के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रशिक्षण स्थल तथा राजनीतिक समाजीकरण के लिए उचित साधन के रूप में लगभग अनिवार्य है। इसलिए आवश्यक है कि पहले की तरह पंचायती राज को ग्रामीण स्तर पर सत्ता संघर्ष का अखाड़ा और विशिष्ट वर्गों के हाथ का खिलौना न बनने दे तथा देश में उचित लोकतांत्रिक वातावरण के विकास के लिए इसका सम्भावित उपयोग करें।

4.8.5 मुख्य शब्दावली

- ग्राम सभा : ये एक तरह से गाँव की पंचायत का विधानमण्डल होती है जिसमें प्रत्येक मतदाता सदस्य होता है।
- शक्ति विकेन्द्रीकरण : शासन की शक्तियों का कुछ हाथों में केन्द्रित न होकर उनका विभिन्न स्तरों पर लोकतांत्रिक संस्थाओं में बंटवारा होना।

4.8.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. 73वें संवैधानिक संशोधन के बाद भारत में पंचायती राज व्यवस्था पर एक नोट लिखिए।
2. भारत में पंचायती राज संस्थाओं के विकास की विवेचना कीजिए।
3. भारत में पंचायती राज संस्था की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।
4. भारतीय संविधान में 73वें संशोधन के अन्तर्गत पंचायती राज के कार्यकरण का आलोचनात्मक आंकलन तथा मूल्यांकन कीजिए।

5. भारत में पंचायती राज की कार्य-प्रणाली का विवेचन करें।
6. भारत में पंचायत राज प्रणाली का महत्त्व बताएँ।
7. पंचायती राज का गठन कितने स्तरों पर किया गया है।
8. 73वां संवैधानिक संशोधन कब किया गया ?
9. भारत में पंचायती राज की समस्याएँ बताएँ ?
10. पंचायती राज संस्थाओं की कार्य-प्रणाली के प्रमुख दोषों का वर्णन कीजिए ?

4.8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, "दा गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया", पैनिटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, "इण्डियन कान्स्टीट्यूशन", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, "कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, "दा ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इण्डिया", प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, "डायनामिक्स ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स", स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, "स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग", एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, "दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस", सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, "दा फॉउंडेशन ऑफ इण्डियन फ़ैडरलिज्म", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967

- पी०आर० ब्राश, "पॉलिटिक्स ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेन्डन्स", II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियॉड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, "डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस," एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, "स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया", वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, "पॉलिटिक्स इन इण्डिया", ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, "डैमोक्रेसी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, "दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेसी", कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, "पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, "एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, "कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया", एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, "इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, "तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति", पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012